सुभाषित और विनोद

लेखक

बा० रामचन्द्र वर्म्मा

प्रकाशक

साह मदनमोहन

लक्ष्मण साहित्य भंडार

चौक-लखनऊ.

प्रथमवार १००० } { साधारण सं० १)
(पुस्तकालय सं० १)

सुभाषित और विनोद

पहला भाग।

कुछ व्याख्या।

तमोगुणविनाशिनी सकलकालमुद्योतिनी,
धरातलविहारिणी जड़समाजविद्वेषिणी।
कलानिधिसहायिनी लसदलोलमौदामिनी,
मदंतरवलम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी॥

(१.) मनुष्य को ईश्वर ने जितनी चीज़ें दी हैं, वाणी उन सब में श्रेष्ठ है। मनुष्य मात्र तथा अन्य समस्त चराचर विश्व में बहुधा इसी कारण अन्तर पड़ता है। मनुष्य के समस्त ऐहिक या पारमार्थिक व्यवहारों के लिये यही मुख्य साधन है। "विचित्रो यस्य विन्यासो विदधाति जगत्पटम्।"— वाणी का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि सूक्ष्म 'वाक्तत्त्वतंतु' की विचित्र रचना के कारण ही सारा जगत्पट तैयार होता है। कौन कह सकता है कि कवि का यह कथन यथार्थ नहीं है? वेदान्त में 'वाक्' और 'ब्रह्म' दोनों शब्दों का एक ही अर्थ में व्यवहार किया गया है;

और ग्रीक भाषा में लोगॉस Logos (वाक्) शब्द ही ईश्वर वाचक है।

(२) यह ईश्वर-स्वरूप वाणी मनुष्य के मन के विचार और अन्तःकरण के भाव व्यक्त करने के काम में आती है। आज तक संसार में ज्ञान का जितना प्रसार और सुधार हुआ है वह सब वाणीका ही फल है। ज्यों ज्यों ज्ञान की वृद्धि होती जाती है और ज्यों ज्यों अन्तःकरण का विकास होने लगता है त्यों त्यों वाणी में भी अधिकाधिक रमणीयता आती जाती है; और ज्यों ज्यों वाणी की रमणीयता बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसकी कार्य्य-साधकता भी बढ़ती जाती है। इस बात का आज तक मनुष्य मात्र के अनुभव होता आया है। वाणी एक चित्‌शक्ति है इस लिये आज तक मनुष्य मात्र ने जिस प्रकार उसका सदुपयोग किया है उसी प्रकार उसका दुरुपयोग भी किया है और वह अब तक भी बराबर वैसा ही करता है। लेकिन इस समय हमें उसके दुरुपयोग के सम्बन्ध में विचार नहीं करना है; बल्कि वाणी की रमणीयता का महत्त्व और गौरव दिखलाना है जो सदुपयोग के लिये साधनीभूत होती है और उस रमणीयता के केवल एक अंग की मीमांसा करना हैं। यह अंग "सुभाषित और विनोद" है।

(३) मनुष्य पुण्यशील हो चाहे पापी हो, सद्‌गुणी हो चाहे दुर्गुणी हो, बुद्धिमान हो या मूर्ख हो, रमणीय वाणी उच्चारण करने का प्रयत्न वह आमरण करता रहता है। इस प्रयत्न में सब लोगों को समान रूप से यश नहीं मिलता, और इस यश के समान न होने के कारण ही संसार में विषमता दिखाई देती है। तथापि यह बात निर्विवाद है कि इस काम के लिये सभी लोग बराबर प्रयत्न करते रहते हैं। जिसे रमणीय वाणी बोलना आता है वह उसके अतिरिक्त वाणी बोलने की इच्छा नहीं करता। उसकी वाणी में

जो कुछ रमणीयता होती है उसे वह बराबर बढ़ाने की ही इच्छा रखता है और उसके लिये वह बराबर प्रयत्न भी करता रहता है। इस रमणीयता का विचार करनेवाले शास्त्र सभी भाषाओं में हैं। यह बात नहीं है कि भाषा की रमणीयता के लिये उसकी शुद्धता की भी आवश्यकता हो। इस लिये जिस व्याकरण शास्त्र में भाषा की शुद्धता और अशुद्धता का विचार होता है वह व्याकरण शास्त्र इस दृष्टि से देखते हुए साहित्य शास्त्र की अपेक्षा कम महत्त्व का ठहरता है। इस समय हमें साहित्य-शास्त्र का सांगोपांग विचार नहीं करना है, केवल शब्दार्थ की रमणीयता का विचार करते हुए उस शास्त्र का जितना निर्देश या उपयोग करना आवश्यक होगा, हम उसका उतना ही निर्देश और उपयोग करेंगे।

(४) वाणीके रमणीय अंगका सुभाषित और विनोद में ही प्रधानतः संग्रह होता है। यह बात एक प्रकार से असम्भव ही है कि सभी देशों के साहित्यों में सुभाषित और विनोद-वचनों को एक ही विशिष्ट स्थान मिले। क्योंकि भिन्न भिन्न लोगों की दृष्टि में सुभाषित और विनोद का स्वरूप और महत्त्व भिन्न भिन्न दिखाई पड़ेगा। अँगरेजी साहित्य में इसे Rhetoric शास्त्र के अन्तर्गत लेते हैं और संस्कृत में वह साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत आता है। अँगरेजी साहित्य-शास्त्र में Wit अथवा Humour के लिये कोई स्वतंत्र स्थान नहीं है। इसी प्रकार संस्कृत साहित्यशास्त्र में भी सुभाषित और विनोद को कोई अलग पदार्थ नहीं माना है और न उसके लिये उसमें कोई स्वतंत्र स्थान है। तथापि हम लोगों ने Wit और Humour अथवा सुभाषित और विनोद को जो कल्पना की है यदि उसके अनुरोध से अँगरेजी और संस्कृत साहित्य-शास्त्र देखे जायँ तो यह बात जानने के

योग्य होगी कि उन शास्त्रों में यह जोड़ी किस अन्तर्भेद या वर्ग में स्थापित की जा सकती है। पहले हम अँगरेजी साहित्य-शास्त्र के विषय में थोड़ा सा लिख कर तब संस्कृत साहित्य-शास्त्र की ओर प्रवृत्त होंगे।

(५) अँगरेजी के सभी साहित्य-शास्त्र प्रायः ग्रीक तत्त्ववेत्ता अरिस्टाटल या अरस्तू के साहित्य-शास्त्र के आधार पर ही बने हैं। अरिस्टाटल के साहित्य-शास्त्र का भाषान्तर और पृथक्करण सब से पहले हाब्स (Hobbes) नामक तत्त्ववेत्ता ने किया था। और इसके उपरान्त आर्क बिशप ह्वेटले और प्रो० बेनने भी इस विषय पर ग्रन्थ लिखे हैं। हाब्स के मत के अनुसार मनुष्य की वाणी के परिणाम-स्वरूप चार शास्त्र उत्पन्न होते हैं। इसमें से पहला काव्य-शास्त्र (Poetics) दूसरा वक्तृत्वशास्त्र (Rhetorics) तीसरा तर्क-शास्त्र (Logic) और चौथा व्यवहार-शास्त्र (Science of Justice) है। काव्य का हेतु है—प्रतिष्ठा बढ़ाना अथवा प्रतिष्ठा कम करना (Magnifying or vilifying)। Rhetorics अथवा वक्तृत्व-शास्त्र का हेतु है—दूसरे का मन फेरना अथवा किसी से अनुनय करना। तर्क-शास्त्र का हेतु है—तर्क प्रतिपादन करना और सत्य सिद्धान्त निश्चित करना। और व्यवहार-शास्त्र का हेतु है—विधि-नियमों के द्वारा मनुष्य-मात्र के व्यवहार में सहायता करना, अर्थात् न्याय की प्रवृत्ति और अन्याय का निरोध करना। इनमें से वक्तृत्व-शास्त्र के सम्बन्ध में अरिस्टाटल का मत है कि उसका उपयोग मुख्यतः चार प्रकार का होता है। एक कुतर्क की दुरुस्ती या शुद्धि करने के लिये, दूसरे शिक्षा देने के लिये, तीसरे व्यंग्यार्थ सुझाने के लिये और चौथे वादविवाद में आत्मरक्षा करने के लिये। किसी से अनुनय करने के समय इन चारों का उपयोग होता है। इस लिये अरि-

स्टाटल ने वक्तृत्व-शास्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है,—The faculty of discerning in every case the available means of persuasion. अर्थात् "किसी विशिष्ट अवसर पर सब परिस्थितियों को ध्यान में रख कर यह जानने की शक्ति कि हमारे पास जो साधन हैं, दूसरे से अनुनय करने के काम में उनमें से कौन से साधन उपयोगी होंगे। इसी तत्त्ववेत्ता के मतके अनुसार वक्तृत्व तीन प्रकार का होता है। एक Deliberative अर्थात् विवादात्मक, दूसरा Epideictic या Ornamental अर्थात् अलंकारिक और तीसरे Forensic अर्थात् न्याय-विषयक। जिसे हम सुभाषित या विनोद-वचन कहते हैं वह अरिस्टाटल के काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत नहीं आता; बल्कि वक्तृत्व-शास्त्र के अन्तर्गत अर्थात् Epideictic किंवा अलंकार-शास्त्र में आता है और उसका विवेचन इसी अन्तर्भाग में किया गया है। Diction का अर्थ है शब्द-रचना अथवा शब्द-प्रयोग-पद्धति। अरिस्टाटल के मतसे विशदता और औचित्य आदि शब्द-प्रयोग के गुण हैं और क्लिष्टता, समास-प्रचुरता, अप्रसिद्धता और अप्रयोजकता उसके दोष हैं। पद्य और गद्य अर्थात् मात्रा और अक्षर की दृष्टि से नियमबद्ध किंवा नियमरहित शब्द-रचना का विचार उसने शब्द-रचना अथवा भाषा-प्रयोग-पद्धति के अन्तर्गत किया है। उपमा और रूपक को उसने मुख्य अलंकार माना है और जिसे हम सुभाषित और विनोद कहते हैं उसका समावेश उसने Vivacity अर्थात् भाषा की प्रफुल्लता या तेजस्विता में किया है। उसी स्थान पर उसने Smart Sayings अथवा चटकीले शब्द-प्रबन्ध के लक्षणों में हास्य-रसका स्पष्ट-रूप से उल्लेख किया है। हमारे यहाँ जिस प्रकार का रस-विचार किया गया है उस प्रकार का रस-विचार ग्रीक भाषा के काव्यशास्त्र अथवा वक्तृत्व-शास्त्र में नहीं है। वक्तृत्वका अन्तमें उत्तम फल निकालने के लिये तीन बातों

की आवश्यकता होती है; एक तो प्रमेयरूप सिद्धान्तकी सत्यता की, दूसरे सुननेवालेकी अनुकूल मनःस्थितिकी और तीसरे स्वयं बोलनेवाले की चतुरता अथवा उसकी प्रसन्न मनःस्थिति की। इनमें से अन्तिम या बोलनेवालेकी मनःस्थिति का विचार करते हुए अरिस्टाटलने मनोविकारों का विचार किया है; परन्तु मनोविकार जिनके स्थायी भाव हैं उन रसोंको हमारे यहाँ जितना महत्त्व दिया गया है उतना महत्त्व उन्हें अरिस्टाटल ने नहीं दिया है। उसका मत है कि जिन "चटकीले शब्द-प्रबन्ध" की लोग बहुत प्रशंसा करते हैं वे अनुनयी और चतुर मनुष्योंके रचे हुए होते हैं और मुख्यतः साधर्म्य, वैधर्म्य और विशद-स्वभाव-वर्णन आदिके कारण उत्पन्न होते हैं। जिस चटकीलें शब्द-प्रबन्ध का स्वरूप हमारे यहाँ के सुभाषित और विनोदसे मिलता जुलता है उसमें हास्य-रसका होना वह आवश्यक नहीं बतलाता। जान पड़ता है कि प्रायः उसका तात्पर्य्य केवल यही है कि उसमें अर्थका चमत्कार अवश्य है। "चमत्कृतिजनक रूपक" नामका एक विशिष्ट प्रकार अरिस्टाटलको बहुत पसन्द था जिसका वर्णन उसने इस प्रकार किया है—"ऐसा आनन्ददायक साम्य ढूँढ़ निकालना जो पहले कभी देखा न गया हो।" तथापि ऐसे चमत्कारिक और आनन्ददायक शब्द प्रयोगसे हास्य-रसकी उत्पत्ति बहुधा होती ही है; और इस लिये यह कहने में विशेष आपत्ति नहीं दिखाई देती कि यह प्रकार निस्सन्देह अँगरेजीके Wit अथवा हिन्दीके "उक्ति चमत्कार" या चोजकी ही प्रतिकृति है।

(६) यह कहने की अपेक्षा कि प्रो० बेनका ग्रन्थ वक्तृत्व-शास्त्र पर है, यह कहना अधिक ठीक हो सकता है की वह मुख्यतः लेखन-कलाके सम्बन्धमें है। उस ग्रन्थमें यह बतलाया गया

है कि शब्दोंका अनुक्रम कैसा होना चाहिए, शब्द-संख्या कम होनी चाहिए या अधिक, वाक्य कैसा होना चाहिए, उसमें ताल-बद्धता किस प्रकार आती है, उसमें कहाँ कम और कहाँ ज्यादः जोर होना चाहिए, वाक्यमें अर्थकी एकता किस प्रकार लानी चाहिए, आदि आदि। इन सब बातोंका विचार करके तब उसने भाषाके अलंकारका विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि इन सब प्रकरणोंमें हमारे यहाँके "रसों" का कहीं विचार नहीं किया गया है। उसमें प्रायः सारा जोर अर्थ-चमत्कृति या अलंकार पर ही दिया गया है। उसने भिन्न भिन्न तत्त्वोंके अनुसार अलंकारोंके भिन्न भिन्न वर्ग या विभाग किए हैं। ये तत्त्व वास्तवमें बुद्धि-तत्त्व और भाव या मनोविकार-तत्त्व हैं। बुद्धि-तत्त्वसे बने हुए अलंकारोंके जो अन्त-र्भेद किए गए हैं वे "साधर्म्य" और "वैधर्म्य" पर अवलम्बित रहनेवाले अलंकार हैं। और अलकारोंके वर्णन के उपरान्त उसमें यह बतलाया गया है कि भाषा-पद्धतिके गुण कौन कौनसे हैं। तात्पर्य यह कि इस ग्रन्थमें भी Wit और Humour को कोई विशिष्ट या स्वतंत्र स्थान नहीं मिला है। बेनने Epigram का एक स्वतंत्र प्रकार बतलाया है। पर यह स्पष्ट है कि Epigram की व्याप्तिकी अपेक्षा Wit और Humour की व्याप्ति कहीं अधिक है।

(७) अँगरेजी भाषामें के वक्तृत्व-शास्त्रकी जो ये बातें बतलाई गई हैं उनके बतलानेका मुख्य हेतु यह है कि मोटे हिसाबसे यह देखा जाय कि इस शास्त्रमें सुभाषित और विनोद को साधा-रणतः कौन सा स्थान मिलेगा। यद्यपि उक्त ग्रन्थमें Wit और Humour को स्वतंत्र स्थान नहीं दिया गया है तथापि और कई अँगरेज ग्रन्थकारोंने इन दोनों पर स्वतंत्र विचार किया है। ये

ग्रन्थकार एडिसन (Addison), लेइंट (Leigh Hunt), हेजलिट (Hazlit), सिडनी स्मिथ (Sydney Smith) आदि हैं। इन लेखकोंने Wit और Humour में किसी प्रकार का भेद नहीं किया है और रूढ़िके कारण उन्होंने "उक्ति-चमत्कार", "चतुरालाप" और "विनोद वचन" आदि सबको कहीं कहीं Wit और Humour इन दोनों ही शीर्षकोंके नीचे रखा है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि हास्योत्पत्तिका तत्व दोनों में ही साधारण है—दोनोंसे ही हास्योत्पत्ति होती है। लेकिन फिर भी एक बात है। उक्त सब ग्रन्थकारोंने निस्सन्देह यह बात मानी है कि यद्यपि Wit और Humour दोनों एक ही विषयके अन्तर्गत आ जाते है तथापि स्वभावतः वे दो भिन्न प्रकार हैं और उनके लक्षणोंमें अन्तर है। एडिसनके Six Papers on Wit वाले लेखमें wit अथवा "उक्ति चमत्कार" ही प्रधान विषय रखा गया है और उसमें कायदेसे Wit और Humour का पृथक विवेचन नहीं किया गया है। तथापि उसका मत है कि Wit और Humour ये दोनों एक नहीं है बल्कि एक दूसरे से भिन्न हैं; इन दोनोंमें परस्पर कुछ विशिष्ट सम्बन्ध या रिश्ता है और वे प्रायः एक दूसरे पर अवलम्बित रहते हैं। अपने Humour वाले निबन्धमें उसने नीचे लिखे अनुसार वंशावली दी है:—

"*Truth* was the founder of the family and the father of *good sense*. *Good sense* was the father of *Wit* who married a lady of a collateral line called *Mirth*, by whom he has issue *humour*. *Humour* being the youngest of this illustrious family, and descended from parents of such various dispositions, as very various and unequal in his temper. Sometimes

you see him putting on grave looks and a solemn habit, sometimes airy in his behaviour and fantastic in his dress, in somuch that at different times he appears as serious as a Judge and as jocular as a Meary Andrew. But as he has a great deal of the mother in him, whatever mood he is in, he never fails to make his company laugh."

इसका अर्थ यह है कि 'विनोदके' श्रेष्ठ घरानेका मूल पुरुष 'सत्य' है। 'सत्य' को शोभनाथ नामक लड़का हुआ। 'शोभनार्थ' के यहाँ 'उक्ति-चमत्कार' नामक लड़का हुआ। उक्ति-चमत्कार ने अपने वंशकी 'आनन्दी' नामक लड़की से विवाह किया। इस दम्पतिसे 'विनोद' नामक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। 'विनोद' का जन्म भिन्न भिन्न स्वभावोंके माता-पितासे हुआ था, इसलिये उसका स्वभाव भी विलक्षण हो गया है। कभी वह देखनेमें गम्भीर, कभी चंचल और कभी विलासी जान पड़ता है। लेकिन विशेषतः उसमें उसकी माताके स्वभावका ही अधिक अंश आया है, इसलिये वह स्वयं चाहे जिस चित्तवृत्तिमें रहे, दूसरोंको वह बिना हँसाए नहीं चूकता।" इस छोटी सी कहानीका तात्पर्य्य केवल यह है कि एडिसनके मतके अनुसार Wit अथवा चोजमें सत्य और प्रौढ़ अर्थ होना चाहिए, उनमें केवल रिंदगी नहीं होनी चहिए। चोज या उक्ति-चमत्कार में जब आनन्द भी मिल जाता है तब वास्तविक विनोद तैयार होता है; और चोजकी स्थितिमें जो हास्य 'स्मित' रहता है वह विनोदकी स्थितिमें प्रकट हास्य हो जाता है—उसमें आदमी खिलखिलाकर हँसने लगता है। यही अर्थ उसने एक दूसरे स्थानपर नीचे लिखे प्रकारसे व्यक्त किया है। वह कहता है:—

If humour would pass for the offspring of wit without mirth, or mirth without wit, you may conclude it altogether spurious and a cheat. अर्थात् जहाँ आनन्द, दिल्लगी और उक्ति-चमत्कार का मेल न होता हो वहाँ समझना चाहिए कि वह विनोद बिलकुल झूठा है। इसी प्रकार एडिसनने यह भी नियम रक्खा है कि "True wit is that which can be translated in different languages; if it bears the test, you may pronounce it true; but if it vanishes in the experiment, you may conclude it to be a pun."

अर्थात्—"चोज या सच्चा उक्ति-चमत्कार ऐसा होता है जिसका भाषान्तर दूसरी भाषाओं में हो सकता है; यदि भाषान्तर करने में उसका आनन्द कम या नष्ट हो जाय तो मानना चाहिये कि वह उक्ति-चमत्कार नहीं बल्कि शब्दश्लेष है।" इससे यह स्पष्ट है कि एडिसन के मतसे चोज़में मुख्यतः अर्थ का चमत्कार होना ही आवश्यक है। उसने wit की व्याख्या इस प्रकार की है "Wit is the resemblance or contrast of ideas that give the reader delight and surprise, especially the latter." अर्थात् "पदार्थों के जिस सम्बन्ध-दर्शन से पाठकों (या श्रोताओं) में प्रसन्नता और आश्चर्य या चमत्कृति उत्पन्न हो, और उसमें भी विशेषतः चमत्कृति जान पड़े, उसे चोज़ कहते हैं।" एडिसन से पहले होनेवाले कवि ड्राइडन Dryden ने wit अर्थात् चोज़ की व्याख्या इस प्रकार की है:—Propriety of word and thought adopted to the subject" अर्थात् "विषय के अनुसार विचार और भाषा-प्रयोग का औचित्य।" लेकिन एडि-

सनने खण्डन करके इस व्याख्या को मानों जड़ से ही नष्ट कर दिया है। उसका कथन है कि यदि ड्राइडन की व्याख्या के अनुसार चोज केवल "औचित्य" ही हो तब तो यूक्लिड (Euclid) के सिद्धान्तों को "चोज़ों का खजाना" ही कहना पड़ेगा। क्योंकि विषय देखते हुए ज्यामिति की पुस्तक में यूक्लिड की भाषा जितनी उचित और उपयुक्त है उतनी उचित और उपयुक्त और कोई भाषा दिखाई ही नहीं देती।

ले हंट के मत के अनुसार—"साधर्म्य या विरोध दिखलाने के उद्देश्य से विषय या असम्बद्ध कल्पनाओं को एक ही स्थान पर पास पास रखना" ही Wit या चोज है। जिस प्रकार आपस में एक दूसरे को शत्रु के समान माननेवाले दो मनुष्यों के एक ही स्थान पर एकत्र होने से झगड़े या विरोध की आशंका होती है पर अन्त में वे दोनों परस्पर मिल जाते हैं उसी प्रकार चोज के द्वारा दो विषय या असम्बद्ध कल्पनाएँ भी एकत्र होकर अन्त में मिल जाती हैं—इनमें एकवाक्यता आ जाती है। चोजबाज या दिल्लगीबाज मनुष्य के भाषण में असम्बद्ध पदार्थों की सुसम्बद्धता दिखाई पड़ती है, और एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर उसी प्रकार प्रकाश पड़ता है जिस प्रकार अँधेरे में सूर्य्य की किरणों का प्रकाश एक दम से जा पड़ता है। इन विषय-कल्पनाओं के एकत्र होने से मनपर दुःखकारक आघात नहीं होता बल्कि उनके योग से उलटे मजा आता है। केवल जिस प्रकार विवाह में एक वर और एक कन्या दो मनुष्यों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार चोज के लिये भी दो कल्पना-विषयों की आवश्यकता होती है; और इन विषय-कल्पनाओं का प्रीति-सम्बन्ध जितना ही अधिक सुखी होता है, उनसे उत्पन्न होनेवाला विनोदात्मक अपत्य भी उतना ही अधिक भला जान पड़ता है।

(Wit is the arbitrary juxtaposition of dissimilar ideas for some lively purpose of assimilation or contrast ,generally of both. It is the clash and reconcilement of incongruities, the meeting of extremes round a corner, the flashing of an artificial light from one object to another, disclosing some unexpected resemblance or connection. It is the detection of likeness in unlikeness, of sympathy in antipathy, or of extreme points of antipathies themselves made friends by the very merriment of introduction. Two ideas are as necessary to wit as couples are to marriage, and the mind is happy in proportion to the agreeableness of the offspring.")

ले हंटके मतके अनुसार उस मनुष्यको विनोदी कहना चाहिए जिसके मनकी प्रवृत्ति कुछ एक पक्षी सी हो, अथवा जिसके विचार और मनोभाव दोनों ही सरल और अपेक्षित मार्ग पर न जाकर केवल उसी ओर बढ़ें जिस ओर आनन्द या मजा अधिक आता हो। उसके विचारों और मनोभावों का उद्देश्य तो यही रहता है पर उस ओर वे डाकके घोड़ोंकी तरह दौड़ते हुए नहीं जाते बल्कि अठखेलियाँ और मौज करते हुए जाते हैं। अर्थात् फल की हानि तो तनिक भी नहीं होती और मार्गके अतिक्रमण से त्रास नहीं बल्कि उलटे सुख ही होता है। जिस प्रकार चातक का विषय "पदार्थों की असम्बद्धता" है उसी प्रकार विनोद का विषय "मानवी स्वभाव और परिस्थिति-सम्बंधी असंबद्धता है।" ये दोनों बातें

जितनी ही अधिक असंबद्धता-दर्शक होंगी, विनोद भी उतना ही अधिक सरस होगा।

(Humour is a tendency of mind to run into particular directions of thought and feeling, more amusing than accountable. The more incongruities the better, but two at any rate are as necessary to humour as two ideas are to Wit; and the more strikingly they differ yet harmonise, the more amusiug the result e. g. love and war; the gullible and manly; the accidental and permanent; the objectionable and the agreeable; flat and sharp-witted; honesty and knavery; pretention and non performance; folly and wisdom; shrewdness and dotishness.)

एडिसन की तरह ले हंट भी यही मानता है कि Wit और Humour ये दोनों पदार्थ स्वभावतः भिन्न लक्षणात्मक हैं, और एडिसनकी तरह उसका भी यही मत है कि दोनों का संयोग और मिलाप वैसा ही होता है जैसा कि दूध और चीनीका संयोग होता है।

(Wit and Humour are to be found sometimes apart but their richest effect is produced by their combiuation. Wit apart from humour is an element to sport with; in combination with humour it runs into the richest utility and helps to humorise the word.)

विलियम हेजलिट एक प्रसिद्ध भाषाविषयक टीकाकार हो गया

है। उसने भी Wit और Humour के भेदका निरीक्षण किया है। वह कहता है—Wit और Humour दोनों के ही विषय हास्य-कारक होते हैं; लेकिन Humour में हास्यकारक विषयका वर्णन स्वभावोक्ति से किया जाता है; और Wit में इसका वर्णन कुछ वक्रोक्तिसे किया जाता है; अर्थात् इस प्रकार के वर्णन में उपमा, विरोध-दर्शन आदि प्रकारों का व्यवहार आवश्यक होता है। Humour में जो चमत्कार होता है वह स्वाभाविक होता है; लेकिन Wit के लिये एक प्रकार की सुसंस्कृत कल्पना-शक्ति और कला-ज्ञान की आवश्यकता होती है।

(Humour is describing the ludicrous as it is in itself. Wit is the exposing it by comparing or contrasting it with something else. Humour is as it were the growth of natural and acquired absurdities of mankind or of the ludicrous in accidental situation and character; Wit is the illustrating and hightening the sense of that absurdity by some sudden and unexpected likeness or opposition of one thing to another which sets off the thing we laugh at or despise in a still more contemptible or striking point of view.

एक दूसरे अँगरेज ग्रन्थकार ने निम्न-लिखित वर्णन करके Wit और Humour का भेद दिखलाया है। वह कहता है:—

"Wit is the light from heaven that dispels darkness; it is diamond that needs light in order that it may sparkle. Humour holds the

torch and lights up the interior; Wit stands on the threshold and says clever things about what it sees. Humour makes the breach in the otherwise impregnable walls; Wit darts and coruscates all around like willow-of-the wisp and grows every moment with the spoils which it appropriates. Humour is child of the imagination; Wit is the darling of the intellect. Humour spreads good temper on every side of it when it takes up its stand in a crowd. All of a sudden Wit springs upon its shoulders and shoots needle-points in the upturned faces. Humour can, however, manage sometimes to put the imp in its pocket."

अर्थात् —"सूर्य्य की किरणों की तरह विनोद स्वयंप्रकाशी है। 'चोज' के लिये हीरे की उपमा उपयुक्त हो सकती है; क्योंकि वह स्वयं स्वच्छ और सुन्दर तो होता ही है परन्तु उसमें से चमक निकालने के लिये बाहर का प्रकाश लाकर उस पर डालना पड़ता है। जिस प्रकार किसी अँधेरे कमरे के दरवाजे पर रोशनी रखने से घर के भीतर का सारा भाग हमें साफ दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार विनोद की सहायता से भी हमें मनुष्य का स्वभाव या सृष्टि का वैचित्र्य साफ दिखाई पड़ता है। 'चोज' प्रायः प्रेक्षक और कमरे के मध्य में, कमरे की ड्योढ़ी पर रहकर उसके भीतरकी सब वस्तुएँ देखता रहता है और उसका चमत्कारपूर्ण वर्णन हमें सुनाता है। बिलकुल अभेद्य मोर्चेबन्दी के किले पर जिस प्रकार तोप के गोलों का परिणाम

होता है उसी प्रकार बहुत ही गम्भीर मनोवृत्ति पर विनोद का प्रभाव पड़ता है और वह आनन्दपूर्ण हो जाती है। जिस प्रकार भूत-लीला के कारण दिखाई पड़नेवाला प्रकाश इधर उधर नाचकर मनको चकित कर देता है उसी प्रकार चाज की बात भी मनुष्य को चकित कर देती है। चोजके कारण जो परिणाम होता है उसका उपयोग प्रतिक्षण उस चोज के स्वरूप को अधिक रमणीय बनाने में होता है।" इँगलैण्ड के प्रसिद्ध चोजबाज सिडनी स्मिथने Wit की मीमांसा विस्तृत रूप से की है। उसके मतके अनुसार चोज में जब तक चमत्कार या विलक्षणता न हो तब तक काम ही नहीं चल सकता—तब तक उसे चोज ही नहीं कह सकते। इसी लिये जो चोजकी बात एक बार सुन ली जाती है उसी को फिरसे सुनने में कोई मजा नहीं आता। इसी प्रकार चोज में सौन्दर्य्य की भी आवश्यकता नहीं है जिससे काव्य अलंकृत होता है। किंवा उसमें का प्रमेय—जिसे हम साधारणतः उपयुक्त बतलाते हैं—ऐसा नहीं होना चाहिये जिसका परिणाम बुद्धि-तत्त्व पर पड़े। चोज में बुद्धिमत्ता का उपयोग तो होना चाहिये लेकिन उसका उपयोग पदार्थों के सुन्दर या उपयुक्त सम्बन्ध ढूँढने के लिये नहीं होना चाहिए बल्कि उस सम्बन्ध को ढूँढ़ निकालने के लिये होना चाहिए जो अनपेक्षित, अद्भुत और चमत्कारजनक हो।

(८) जितने हास्य-रसोत्पादक शब्द-प्रबन्ध होते हैं, अँगरेजी भाषा में उन सबका समावेश मोटे हिसाब से Wit और Humour इन्हीं दोनों शब्दों के अन्तर्गत होता है। Anagram, Epigram, Witticism आदि और भी कुछ थोड़े से शब्द हैं परन्तु वे विशेषार्थदर्शक हैं इसलिये उनका उपयोग जाति व्यक्त करने के लिये नहीं हो सकता। Wit और Humour

शब्द जितने रूढ़ हैं उतने रूढ़ और कोई शब्द नहीं हैं। यदि संस्कृत भाषा में इस विषय के शब्द ढूँढ़े जायँ तो सुभाषित, सुप्रलाप, सुवचन (देखो अमरकोश) सूनृत, सूक्ति, चतुरालाप, विनोद-वचन आदि शब्द हमें मिलते हैं। इस के लिये ठेठ हिन्दी शब्द "चोज" रखा जा सकता है। इन सब शब्दों में से सुभाषित शब्द ही सबसे अधिक व्यापक और रूढ़ है। अँगरेजी के Wit और Humour दोनों ही शब्द अलग अलग हैं और कोई ऐसा शब्द नहीं मिलता जिसके अन्तर्गत इन दोनों शब्दों के भाव आ जायँ। लेकिन हमारे यहाँ के 'सुभाषित' या 'विनोद' शब्दके अन्तर्गत इन दोनों का ही समावेश हो सकता है। प्रस्तुत विषय के लिये Wit शब्दकी उपयुक्त व्याख्या अँगरेजीमें इस प्रकार है—"Felicitious association of objects, not usually connected, as to produce a pleasant surprise." अर्थात्—"ऐसे अनेक पदार्थोंका, जिनमें पहले पहल देखने से किसी प्रकारका सम्बन्ध न जान पड़े, ऐसा समर्पक और मनोरम सम्बन्ध जोड़कर दिखलाना जिसे देखने से प्रसन्नकारक चमत्कार उत्पन्न हो—मज़ा आवे।" हिन्दीमें चोज शब्द से भी प्रायः यही बोध होता है। Humour की व्याख्या है—"That quality of the imagination which gives to ideas an incongruous fantastic hue and tends to excite laughter or mirth." अर्थात्—"वह कल्पनाशक्ति जिसकी सहायतासे विचार अथवा कल्पनाका स्वरूप असंबद्ध, विकृत अथवा अद्भुत हो जाय और जिसका परिणाम हास्य-रसोत्पादक हो।" हमारे यहाँ इसका समानार्थक शब्द "विनोद" है और इस शक्तिसे उत्पन्न होनेवाले वचनको विनोद-वचन कह सकते हैं। इस प्रकार निम्न-लिखित परिभाषा-समीकरण तैयार होता है।

Wit and Humour = सुभाषित ।
(हास्य-रसोत्पादक शब्दप्रबन्ध)
Humour = विनोद (वचन)
Wit = चोज । वैदग्ध्य ।

Wit और Humour दोनों शब्दोंका समर्पक और व्यापक भाषान्तर "हास्यरसात्मक शब्दप्रबन्ध" होगा । लेकिन यह शब्द बहुत बड़ा है और रूढ़ भी नहीं है ; और "सुभाषित" शब्द रूढ़ और छोटा है और उसका व्यवहार सुगमता से हो सकता है । इस परिभाषाकी समर्पकता या औचित्य देखने के लिये पहले इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि Wit और Humour दोनों का ही पर्यवसान हास्य-रसोत्पत्ति में होता है । चोज (Wit) की व्याख्या में अनेक पदार्थोंका अनपेक्षित और चमत्कारपूर्ण सम्बन्ध दिखलाना पड़ता है और आगे चलकर हास्यकी जो शरीर-मीमांसा की गई है उसे देखनेसे स्पष्ट रूपसे इस बातका पता लग जायगा कि इस प्रकार चमत्कार उत्पन्न होने पर हास्य-रसकी उत्पत्तिका होना आवश्यक है । Wit अथवा चोजकी बात कहनेसे यद्यपि Laughter किंवा "प्रस्फुटित हास्य" उत्पन्न होना आवश्यक नहीं है तथापि Smile अथवा 'स्मित' अवश्य उत्पन्न होना चाहिए । Humour अथवा विनोद-वचनमें तो स्फुट हास्य प्रायः होता ही है । इससे यह स्पष्ट है कि उसका पर्यवसान भी हास्य-रसकी उत्पत्तिमें ही होता है । Wit और Humour दोनोंमें ही हास्य रसोत्पादन एक साधारण धर्म्म है । लेकिन अँगरेजीमें कोई ऐसा एक शब्द नहीं मिलता जिसमें इन दोनोंका समावेश हो सके । संस्कृतका 'विनोद' शब्द ऐसा है जो दोनों अर्थोंका व्यंजक है और उसमें चोज, चतुरालाप, विनोदवचन आदि सबकी व्याप्ति हो जाती है ।

इसीलिये हमने इसे जातिवाचक रखा है। अँगरेजी कोशोंमें Wit और Humour शब्दोंकी समर्पक व्याख्या दी हुई है। लेकिन संस्कृतके 'सुप्रलाप', 'सुवचन', 'सूक्ति', 'सुभाषित', 'विनोदवचन' आदि शब्दोंकी व्याख्या उन भाषाओंमें कहीं अच्छीतरह नहीं दी गई है *। ऐसी अवस्था में हम यह बात समझते हैं कि साधारणतः रूढ़ार्थका ध्यान रखते हुए और Wit तथा Humour किंवा हास्य-रसोत्पादक वचनों के स्थूल विभागका ध्यान रखते हुए उक्त परिभाषा-समीकरण सम्बन्धमें मतभेद हो सकता है। तथापि जबतक शब्दार्थ निश्चित न हो तबतक यदि इस प्रकारका मतभेद हो तो हमारी समझमें इसमें कोई नई या विलक्षण बात नहीं है। और फिर इस विषयकी आगे चलकर जो चर्चा की गई है वह यदि पाठकोंको पसन्द हुई तो यह भी सम्भव है कि कभी न कभी हमारे दिए हुए समीकरणके शब्दार्थ भी रूढ़ हो ही जाँयगे। क्योंकि शब्दार्थके रूढ़ होने के लिये केवल इसी बातकी आवश्यकता होती है कि वह वाच्यार्थसे बहुत मिलता जुलता हो और उसका व्यवहार सुगम हो।



---

* हिन्दी शब्दसागरमें 'चोज' की व्याख्या इस प्रकार की गई है—"वह चमत्कारपूर्ण उक्ति जिससे लोगोंका मनोविनोद हो।" परन्तु प्रस्तुत विषयको देखते हुए यह व्याख्या भी यथेष्ट समर्पक और व्यापक नहीं जान पड़ती।—अनुवादक।

दूसरा भाग।

सुभाषित और विनोदका संस्कृत-साहित्य में स्थान।

(६) अब यह देखना चाहिए कि सुभाषित और विनोद को संस्कृत साहित्यमें कौनसा स्थान मिला है। संस्कृतमें भाषा-विषयक शास्त्रके दो मुख्य भेद हैं। एक व्याकरण-शास्त्र और दूसरा साहित्य-शास्त्र। अन्यान्य भाषाओंकी तरह संस्कृत भाषामें भी शब्द-प्रबन्ध दो प्रकार के होते हैं एक गद्य और दूसरा पद्य। गद्य वह है जिसमें मात्रा या छन्द आदि के सम्बन्धका कोई नियम न हो और पद्य वह है जिसका शब्द-प्रबन्ध छन्द के अनुसार हो। परन्तु यह गद्य और पद्य का भेद गौण माना गया है और मुख्य भेद काव्य और अकाव्य (अर्थात् जो काव्य न हो) है; और साहित्य-शास्त्रमें प्रधानतः काव्य के सम्बन्ध में ही विचार होता है। लोग पद्य और काव्य को प्रायः पर्यायवाची मानते हैं क्योंकि अधिकांश काव्य पद्यों ही में ग्रथित मिलता है। परन्तु तात्त्विक-दृष्टिसे विचार करते समय पद्य और काव्य को दो पृथक् वस्तुएँ मानना चाहिए। क्योंकि जब केवल संस्कृत-साहित्य-शास्त्र ही नहीं, अन्यान्य सभी भाषाओं के साहित्य शास्त्रों के मतानुसार भी काव्य की व्याख्या "विशिष्ट गुणयुक्त सरस रसप्रबन्ध" ही है तब गद्य भी काव्य हो सकता है। अमुक शब्दप्रबन्ध गद्य है अथवा पद्य, यह अन्वेषण इस अन्वेषण की अपेक्षा कि वह शब्दप्रबंध सगुण है अथवा

निर्गुण, सदोष है अथवा निर्दोष, सरस है अथवा रसहीन, सालङ्कार है अथवा निरलङ्कार, बहुत कम महत्व रखता है। जब हमें किसी मनुष्य के विषय में कुछ जानने की इच्छा उत्पन्न होती है तब हम यह नहीं जानना चाहते कि वह पगड़ी पहनता है अथवा टोपी ; किन्तु यह जानने की इच्छा होती है कि उसमें क्या क्या गुण तथा दोष हैं, वह विद्वान् है या मूर्ख, रसिक है या अरसिक। साहित्यशास्त्र में भी मुख्यतः काव्य की आत्मा और उसके गुण दोषों का ही विवेचन होता है।

(१०) काव्यके दो भेद हैं ; एक श्रव्य काव्य और दूसरा दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य का अर्थ है सुनने का काव्य; दृश्य काव्य वह है जिसका प्रयोग हम अपनी आँखों से देख सकते हैं। परन्तु गद्य और पद्य के भेद की तरह यह भेदभी प्रायः निरर्थक ही है। क्योंकि दृश्य काव्य बहुधा श्राव्य भी होता ही है। केवल मूक आविर्भाव अथवा विशिष्टार्थदर्शक अंग-रचना ही (Pantomime) को काव्य नहीं कहा जा सकता। किन्तु श्राव्य काव्य ही आविर्भाव के संयोग से दृश्य होता है। श्राव्य काव्य में महाकाव्य, उप-काव्य, क्षुद्रकाव्य, खण्डकाव्य, कथा, उदाहरण, चक्रवालक, भोगावली, विरुदावली, तारावली, रत्नावली आदि भेद हैं ; और दृश्य काव्य में प्रकरण, महानाटक, नाटक, भाण, प्रहसन, डिम आदि हैं।

(११) उत्तम, मध्यम और अधम ये काव्य के तीन और भेद होते हैं। वस्तुतः उसका यही वर्गीकरण विशेष महत्वपूर्ण है। उत्तम काव्य में व्यंगार्थ प्रधान होता है, मध्यम काव्य में व्यंगार्थ गौण होता है और अधम काव्य में केवल शब्दों का वाच्यार्थ ही चमत्कारपूर्ण अतएव प्रधान होता है। काव्यकी व्याख्या कई तरह से की गई है। किसी के मत से रस ही काव्य

की आत्मा है। इसलिये व्याख्यामें जिसमें रसका उत्तम परिपाक हुआ वही यथार्थ काव्य है। कुछ लोग गुणयुक्त और निर्दोष शब्दप्रबन्ध को ही काव्य मानते हैं। परन्तु गुण वास्तव में रसों के स्वाभाविक धर्म माने गए हैं। इस कारण काव्य और रस में ही विशेष अवलम्बी-अवलम्ब-सम्बन्ध सिद्ध होता है। अलंकार के बिना रस-परिपाक हो सकता है, परन्तु उसके बिना काव्य में अर्थ-चमत्कार नहीं आ सकता। पण्डितराज जगन्नाथने 'रसगंगाधर' में काव्य की व्याख्या की है—"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यं।" अलंकार के बिना रस-परिपाक मात्र से अर्थ यथेष्ट रमणीय नहीं हो सकता। इस कारण अलङ्कार काव्य का अंगभूत परन्तु आवश्यक गुण हो गया है। साहित्य-शास्त्रकार यद्यपि अलङ्कार को गौण मानते आये हैं तथापि अधिकांश स्थलोंपर अलङ्कार रचना ही से सच्ची विद्वता तथा रसिकता का परिचय मिलता है। अलङ्कार के बिना रस परिपाक यथेष्ट मनोवेधक नहीं होता।

(१२) साहित्य शास्त्रकारोंके मतानुसार काव्योत्पत्ति के लिये इतनी बातें आवश्यक होती हैं :—

"शक्तिः निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्। काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यासः॥"

इनमें से शक्ति कवित्वका बीजस्वरूप एक संस्कार है। Poets are born, not made. (कवि जन्म से ही होते हैं बनाए नहीं जाते)—यह अंगरेजी लोकोक्ति भी उपर्युक्त विचार की पोषक है। जिस प्रकार बुद्धि ईश्वरकी देन है उसी प्रकार कवित्व शक्ति भी ईश्वरीय देन ही है। इस कवित्व-शक्तिको प्रतिभा कहते हैं। प्रतिभाकी व्याख्या है "नवनवोन्मेषशालिनीप्रज्ञा" अर्थात् वह शक्ति जो प्रतिक्षण विकसित होकर कल्पनासृष्टिमें नवीन

नवीन दृश्योंके दर्शन कराती है।" यह शक्ति अवश्य ही ईश्वरीय देन है। मनुष्यके उद्योगोंसे उसकी प्राप्ति असम्भव है। यही माना जाता है कि उसकी प्राप्ति पूर्व जन्मके सुकृत संस्कारों तथा सौभाग्यसे ही होती है।

(१३) साहित्य-शास्त्रकारोंने माना है कि कवित्व शक्ति के होते हुए भी रमणीय काव्यकी उत्पत्तिमें निम्न लिखित काव्य-फलोंमें से एक दो फलोंका होना आवश्यक है। अलङ्कार शास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य्य मम्मट ने इतने प्रकारके काव्यफल माने हैं।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

इनमेंसे व्यवहार-विज्ञान और धन-प्राप्ति को लौकिक तथा अनर्थ-निवारणको भ्रममूलक फल मान लेने पर भी एकतो यश, दूसरे काव्य-रसास्वादनसे उत्पन्न होनेवाला तथा अन्य समस्त ज्ञान विषयोंको क्षणभरके लिये लय करनेवाला आनन्द और तीसरे हृदय को मर्म्म करनेवाले मधुर उपदेश ये तीन महत्त्व-पूर्ण फल शेष रहते हैं।

(१४) अलङ्कार और गुण-दोषोंकी विवेचनाके पहले रसके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक है। अन्तःकरणके धर्मों के दो भेद हैं; एक विचार, दूसरा भाव। विचार वह सिद्धान्त है जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभवके आधारपर प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शब्द इन चारोंमें से किसी एक प्रमाण की सहायता से स्थिर किया गया हो। अन्तःकरणकी सहज और स्वाभाविक वृत्ति भाव कहाती है। आभ्यान्तरिक और बाह्य या

शरीर भेदसे भाव दो प्रकारके होते हैं। कुछ आन्तरिक भाव स्थायी अर्थात् चिरकाल तक रहनेवाले तथा दृढ़ होते हैं और कुछ क्षणिक अथवा अस्थिर। परिपुष्टता अथवा उत्कर्षको पहुँचनेपर स्थायी भाव ही रस कहलाते हैं। भावकी और प्रकारकी व्याख्याएँ भी मिलती हैं जैसे—"रसानुकूल विकृतिः भावः" (मन्दारमन्दर चम्पू पृ० ६१)। कोई अन्य भाव—चाहे वह प्रतिकूल हो अथवा अनुकूल—स्थायी भावका विच्छेद नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, बल्कि रस जबतक स्थिर रहता है तबतक वह ऐसे सब भावोंको अपनेहीमें लीन कर लिया करता है। स्थायी भाव निम्न लिखित हैं—प्रीति, हर्ष, शोक, क्रोध, उत्साह भय, जुगुप्सा, विस्मय और शान्ति। क्रमसे इन स्थायियोंके आश्रयसे रहनेवाले नौ रस हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त। कुछ लोगोंका मत है कि "रसोवै सः" इत्यादि वेदवचनों के अनुसार रस केवल एक ही है और वह शृंगार है। बहुतों के मतसे मुख्य रस चारही हैं—शृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स। भरत नाट्यशास्त्रका निम्न लिखित श्लोक इस कल्पनाका आधार है:—

शृङ्गाराद्धि भवेत् हास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिः बीभत्साच्च भयानकः॥

अन्य कई एक आचार्यों के मतसे रस आठ हैं; वे शान्त को रस नहीं मानते। दूसरे कुछ लोग "ललित" नामका एक दसवाँ रस भी मानते हैं जिसका स्थायी भाव 'वात्सल्य' अथवा सन्तान-विषयक प्रीति (स्त्री पुरुष-विषयक नहीं) है।

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैः विच्छिद्यते न यः।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स्थायी भावाद्रसस्थितिः॥

(१५) स्थयी भावोंसे भिन्नता दिखलानेवाले व्यभिचारी और सात्विक नामके दो प्रकारके और भी भाव होते हैं। व्यभिचारी भावका लक्षण यह है कि वह रसके लिये आवश्यक नहीं होता बल्कि उसका सहचर मात्र होता है। हाँ, जितने समयतक वह उपस्थित रहता है उतने समयतक रसोत्कर्षमें सहायता करता है। रसोत्पत्तिमें सदैव किसी एक पुरोगामी प्रत्यक्ष कारणकी आवश्यकता पड़ती है; इसी कारणको विभाव कहते हैं। ये कारण आलम्बन अथवा उद्दीपन रूप होते हैं। शृंगारमें स्त्री-पुरुष आदि आलम्बन विभाव हैं। इसी तरह हास्यमें विदूषक, बहुरूपिया, मूर्ख मनुष्य आदि हास्योत्पादक पदार्थ आलम्बन हैं। शृंगारमें उद्दीपन विभाव वे पदार्थ हैं जिनसे कामोद्दीपन होता है। जैसे—चन्द्रोदय, उद्यान, कोयलकी कूक आदि। अनुभाव उन कार्योंका नाम है जो रसकी सञ्चारदशामें प्रस्तुत करता है। जैसे शृंगारमें कटाक्षप्रेक्षण, भुजक्षेप इत्यादि; हास्यमें हँसना, तालियाँ बजाना इत्यादि।

रसानुभवगोचरत्वं नयन्ति ये।
प्रयत्नजादेहधर्माः अनुभावाश्चते मताः॥

सात्विक भाव उन भावोंको कहते हैं जो सुख दुःखादि भावनाओंसे भावित अन्तःकरणसे उत्पन्न होते हैं। इनकी संख्या ६ है—रोमाञ्च, स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु और वैस्वर्य।

(१६) सब रसोंके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावोंके उदाहरण देने के लिये बहुतसा समय और स्थान आवश्यक होगा। भावोंके सम्बन्धमें इतना और कह देना आवश्यक है कि एक रसका स्थायी भाव दूसरेका सञ्चारी हो सकता है और परस्पर मित्र रसोंमें इसतरह एक दूसरे के स्थायी

भावोंके सम्मिलनसे इसका उत्कर्ष होता है। शुद्ध रस नौ हैं। परन्तु साहित्य शास्त्रकारों के मतसे विशेष स्थलोंपर कुछ विशेष रसोंका एकत्र होना परस्परके उत्कर्षका कारण होता है। ऐसे स्थानों पर रससङ्कर आनन्ददायक और मजेदार होता है।

(१७) कौन रस किस रसका विरोधी और कौन किसका उपकारक है अर्थात् किन किन रसोंके सम्मिलनसे रसहानि नहीं हो सकती, यह नीचेकी तालिकासे विदित होगा।

रस	विरोधी रस	उपकारक रस
शृंगार	करुण, वीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक	हास्य
हास्य	भयानक और करुण	शृंगार
करुण	हास्य और शृंगार	×
रौद्र	हास्य, शृंगार, भयानक और अद्भुत	करुण
वीर	भयानक और शान्त	अद्भुत
भयानक	शृंगार, वीर, रौद्र, हास्य और शान्त	,,
वीभत्स	शृंगार	भयानक
अद्भुत	रौद्र	,,
शान्त	वीर, शृंगार, रौद्र, हास्य और भयानक	,,

(१८) वाणीके रमणीय अंग काव्यके मुख्य अंग "रस" का यहाँतक एक प्रकारसे विवेचन हो चुका। अब संक्षेपमें गुण दोषोंपर विचार किया जायगा। ऊपर एक जगह कह आये हैं कि गुण रसका धर्म्म है। गुणोंके केवल तीन भेद हैं—माधुर्य,

ओज और प्रसाद। जिस शब्दार्थगुणसे अन्तःकरण द्रवीभूत होता है वह गुण माधुर्य है। ओज गुणसे अन्तःकरणका दीपन होता है। जो गुण शब्दोंके अर्थको सुगम करके अन्तःकरणको उनसे एकदम व्याप्त कर देता है उसे प्रसाद कहते हैं। अनेक आचार्योंके मतसे शब्द और अर्थके अलग अलग गुण मिलकर कुल २१ गुण होते हैं। परन्तु पूर्वोक्त तीन गुणोंमें उन सभी गुणोंका समावेश होनेके कारण उनका पृथक् विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जिस पद, शब्द, अर्थ, वाक्य अथवा अलङ्कारसे अर्थ-हानि हो वह दोष कहलाता है। दोषोंके अनेक भेद हैं; परन्तु यहाँ उनकी विस्तृत विवेचना अनावश्यक है। उत्तम काव्यमें पूर्वोक्त गुणोंमें से कोई एक गुण स्पष्ट लक्षित होना चाहिए, इसीतरह प्रायः उसे दोषोंसे अलिप्त भी रहना चाहिए।

(१६) महत्त्व के विचारसे रसोंके पश्चात् अलङ्कारों का ही स्थान है, बल्कि इनका महत्त्व भी रसोंके बराबर ही माना जा सकता है। क्योंकि अर्थमें जो चमत्कार और रमणीयता आती है वह सर्वांशमें रस ही से नहीं आती बल्कि जो अलंकार-रचना उस अर्थ को व्यक्त कराती है वह भी इसमें बहुत कुछ सहायक होती है। रस शुद्ध द्रव्य रूप है और अलंकार उसपर की हुई कारीगरी है। आभूषण बनाने के लिये सबसे पहले उत्तम सोनेकी तो आवश्यकता होती ही है; परन्तु सोनेके डले मात्र को कोई आभूषण नहीं कहता। जब कारीगर उसपर अनेक तरहकी नक्काशियाँ बना देता है तभी वह आभूषण कहलानेका अधिकारी होता है। यही उदाहरण रस और अलङ्कारके परस्पर सापेक्ष महत्त्व के सम्बन्धमें भी ग्राह्य है। और जिस तरह सोनेके एक ही डलेसे जुदा जुदा नक्काशियों और कारीगरियोंके योगसे अनेक

आभूषण बनते हैं उसी तरह एक ही रस उत्पन्न करनेवाले अनेक शब्द तथा अर्थ भी भिन्न भिन्न अलङ्कारोंके साँचेमें ढल सकते हैं। संस्कृत साहित्य शास्त्रोंमें अलङ्कारकी व्याख्या है—"जिससे काव्य शोभासम्पन्न होता है" जो अस्पष्ट है। शब्दके ८ और अर्थके १२० इस प्रकार कुल १२८ अलंकार माने गए हैं; तौ भी यह संख्या निश्चित नहीं है। आचार्योंने इनसे अधिक या कम अलङ्कार भी माने हैं *। शब्दालंकारोंकी अपेक्षा अर्थालंकारोंका महत्त्व अवश्य अधिक समझा जाता है। उपर्युक्त १२० अर्थालंकारोंका वर्गीकरण अलग अलग सिद्धान्तोंके विचारसे करनेसे उनके ५ भेद सिद्ध होते हैं। अलंकारोंका मुख्य कार्य्य है भिन्न भिन्न वस्तुओंके धर्म्मों अथवा स्वरूपोंकी सहायतासे उनमें अन्तर्निहित चमत्कारों तथा अज्ञात सम्बन्धोंको ढूँढ़ निकालना। एक वस्तुके दूसरी वस्तुसे मुख्यतः दो प्रकारके सम्बन्ध होते हैं; एक साधर्म्य अथवा समताका दूसरा वैधर्म्य अथवा विरोधका। इन्हीं दो सिद्धान्तों को आधार मानकर अलंकारोंका विभाग करनेसे अधिकांश अलंकार साम्यमूलक और विरोधमूलक इन्हीं दो विभागोंमें विभक्त हो जायँगे। अध्यवसाय, वाक्यन्याय, लोकव्यवहार, तर्कन्याय, रचनावैचित्र्य, अपह्नव, विशेषणवैचित्र्य इत्यादि सूक्ष्म सिद्धन्तोंकी दृष्टिसे उनके और भी कितनेही वर्गीकरण हो सकते हैं। परन्तु चाहे जिस प्रकारका वस्तु-सम्बन्ध दिखाना हो, अर्थ-वैचित्र्य अलंकारोंका एक ऐसा भाग है कि जिसके बिना प्रायः अलंकार बन ही नहीं सकता। अर्थ-वैचित्र्य असाधारण अथवा अद्भुत शब्दार्थयोजनासे उत्पन्न होता है।

---

* अधिकतर आचार्योंके मतसे शब्दालंकार १० और अर्थालंकार १०८ हैं। परन्तु इनमेंसे बहुतसे ऐसे अलंकार अनावश्यक भी कहे जा सकते हैं जिनका आधार केवल वर्ण्य-विषय होता है, वर्णन-शैली नहीं। अनु०।

अद्भुत शब्दार्थयोजनाके मुख्य ४ प्रकार हैं: एक पर्यायोक्ति, दूसरा अतिशयोक्ति, तीसरा अन्योक्ति और चौथा साम्य-विरोध-दर्शनोक्ति। अर्थालंकार मात्र उपर्युक्त चार प्रकारों में से प्रायः किसी एक प्रकारमें अवश्य अन्तर्भुक्त होते हैं।

(२०) सुभाषित, चोज, विनोद-वचन आदि हर एक भाषामें वाणीको रमणीय बनाने के मुख्य साधन हैं। अतएव इनमेंसे प्रत्येकपर हमें थोड़ा बहुत विचार करना बहुत आवश्यक जान पड़ता है।

(२१) सुभाषित शब्दके यौगिकार्थपर विचार करनेसे उसका अर्थ "उत्तम भाषण" होता है। परन्तु 'उत्तम भाषण' कदापि किसी निश्चित अर्थका बोधक नहीं है। रूढ़ार्थ की भी यही दशा है। सुभाषित शब्दकी व्याख्या संस्कृत साहित्य शास्त्रोंमें नहीं की गई है; और लोकव्यवहारमें तो जिसने जैसा चाहा उसने उसी तरहसे उससे काम निकाला है। परन्तु यह सामान्य सिद्धान्त है कि व्यवहारमें किसी शब्दकी व्यापकता जिस हिसाबसे अधिक होती है उसी हिसाबसे उसका अर्थबोध कम होता है। जिसे सुभाषित शब्दकी व्यापकता की वृद्धि देखनी हो वह 'सुभाषित-रत्नाकर' अथवा 'सुभाषितरत्न भाण्डागार' आदि ग्रन्थोंसे अपनी इच्छा पूरी कर सकता है। 'सुभाषितरत्न भाण्डागार'का सुभाषित संग्रह बहुत बड़ा तो है परन्तु वह केवल पद्योंका संग्रह है। गद्यका संग्रह उसमें बिलकुल किया ही नहीं गया है। इससे यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त ग्रन्थोंके संग्राहकोंके विचारसे सुभाषित केवल पद्यहीमें हो सकते हैं। परन्तु संस्कृत के पाठक इस बातसे अवगत होंगे कि संस्कृत साहित्यके अन्तर्गत गद्यमें भी बहुतेरे चोज तथा विनोद-वाक्य पाए जाते हैं। इसका एक छोटासा नमूना वह चोज है जो शाकुन्तल नाटकके विदूषकने दुष्यन्तके विषयमें कहा था।

उसने कहाथा-"कृतं त्वया उपवनं तपोवनं" अर्थात् हे राजन्! इस तपोवनको तुमने उपवन ही कर डाला। यह सुभाषित होने पर भी गद्यमें ही है। यहाँ तपोवन और उपवन इन परस्परभिन्न, बल्कि परस्परविरोधी पदार्थोंका सम्बन्ध दुष्यन्तके विलासी कार्य्यों से जोड़कर कविने चमत्कार उत्पन्न किया है।

वस्तुतः ऐसे वचनोंका संग्रह ही सुभाषितरत्न भाण्डागारमें होना चाहिए था। इसमें उनके संगृहीत न होनेसे सुभाषितके अर्थकी कल्पना एक तरहपर अव्याप्ति दूषणयुक्त देख पड़ती है। दूसरी ओर उपर्युक्त भाण्डागारमें जिन पद्योंका संग्रह किया गया है उनसे उक्त कल्पनामें अतिव्याप्ति दूषण सिद्ध होता है। कारण यह कि ये पद्य इतने भिन्न भिन्न वर्गोंके हैं कि उनके आधार पर कोई ऐसा नियम अथवा निबन्ध स्थिर किया ही नहीं जा सकता जिससे सुभाषितकी व्याख्या निश्चित करनेमें कुछ सहायता मिल सके। हमें तो उक्त भाण्डागार भानमतीका एक पिटारा ही मालूम होता है। उसमें परब्रह्मनमन वर्णन, विशेष विशेष देवताओं के वर्णन तथा स्तोत्र, दशावतार स्तुति-पाठ, जुदा जुदा शास्त्रोंकी स्तुति-निन्दा, वर्णाश्रम वर्णन, व्यवहारस्तुति, व्यवहारनिन्दा, सामान्य तथा विशेष राजप्रशंसा राजसभा और उसके घटकोंका वर्णन, नवरस वर्णन, अन्योक्ति कलाप, चित्रकाव्योंके उदाहरण आदि सैकड़ों विषय भरे पड़े हैं। अब यदि उसके प्रत्येक पद्यको सुभाषितके लक्षणोंका पात्र कहा जा सकता हो तो फिर कदाचित् संस्कृत साहित्यमें एक भी ऐसा पद्य न मिलेगा जो सुभाषित कहलाने का उतना ही उचित अधिकारी न हो। हमने यह आक्षेप इसलिये नहीं किया है कि उक्त ग्रन्थमें बहुत अधिक विषयवैचित्र्य है, क्योंकि पद्य-विशेषका सुभाषित होना या न होना उसमें वर्णित विषयपर

नहीं किन्तु उस पद्यकी रचना और उसमें रहनेवाले अर्थचमत्कारपर अवलम्बित है। उदाहरणार्थ परब्रह्म जैसे नीरस अथवा गम्भीर विषयपर भी दो चार ऐसे पद्य कहे जा सकते हैं जिनपर सुभाषितके लक्षण पूर्णतया घटसकें। इसके विरुद्ध 'राजयशोवर्णन' अथवा 'मदनचरित्र' सरीखे सरस और सुभाषितके अनुकूल विषयों पर भी किसीकी पद्यरचना ऐसी हो सकती है जो असुभाषित-कोटि में स्थान पाने के योग्य हो। हमारे पूर्वोक्त आक्षेपका भावार्थ यह है कि सुभाषितरत्न भाण्डागारमें सभी विषयोंपर ऐसे अनेक पद्य संगृहीत हैं जिनमें किसी प्रकारका जरा भी चमत्कार नहीं। अतएव जब ऐसे पद्य भी सुभाषित मान लिए जायँगे तब संस्कृतके एक भी शब्दप्रबन्धको सुभाषित मानना अनुचित नहीं हो सकेगा।

(२२) जब खास सुभाषितरत्न भाण्डागारकी ऐसी दशा है अर्थात् जिस ग्रन्थका मुख्य विषय सुभाषित ही है उसीमें जब उसकी कल्पना इतनी अनिश्चित और अव्यवहारोपयोगी है तब अन्य स्थानोंमें—संस्कृत काव्य, नाटक, उपन्यास आदि में जिनमें सुभाषितका उपयोग कुछ ऐसा वैसा ही हुआ है—उसकी यथार्थ व्याप्ति निश्चित करनेके योग्य साधन पानेकी आशा करना अपनेको भ्रममें डालना है। बाणभट्टने 'कादम्बरी' में वैशम्पायन शुकका वर्णन करते हुए लिखा है—"वेदिता गीत श्रुतीनां काव्यनाटकाख्यायिकाप्रभृतीनां अपरिमितानां सुभाषितानां अध्येता स्वयंचकर्त्ता।" इससे प्रकट होता है कि उन्होंने काव्य, नाटक, आख्यायिका आदि सब प्रकारके रसयुक्त प्रबन्धों को सुभाषित माना है। इसी प्रकार उज्जयिनीके निवासियोंका वर्णन करते हुए भी उन्हें 'सुभाषितव्यसनी' अर्थात् 'सुभाषितसे प्रेम रखनेवाले' कहा गया है। इस स्थानपर भी इस शब्दका

अर्थ ऊपरकी तरह अतिव्यापक ही सिद्ध होता है। अमरकोशमें तो सुभाषित शब्दका पता ही नहीं है । हाँ, उसके टीकाकारने वाग्वार्त्तामें सुपलापवचन की टीका करते हुए लिखा है कि 'द्वे सुभाषितस्य' अर्थात् ये दो शब्द सुभाषित-वाचक हैं । पर यह उसी भाषामें अनुवाद मात्र हुआ; इससे सुभाषित शब्दका अर्थ कदापि निश्चित नहीं होता । इस स्थितिका कारण यह नियम ही है कि शब्दकी व्यापकता जितनी अधिक होती है उसका यथार्थ अर्थबोध उतना ही कम होता है।

(२३) अब यह देखना चाहिए कि प्रस्तुत पदार्थोंकी व्याख्या और भी किसी रीतिसे निश्चित की जा सकती है अथवा नहीं। यह रीति पृथक्करणकी है। 'सुभाषित' किसको कहना चाहिए, यह प्रश्न सचमुच बड़ा टेढ़ा है। भिन्न भिन्न उदाहरण सामने रखकर उनमें जो अंश बहुमतसे सुभाषितके लक्षणोंके विरुद्ध दिखाई पड़ें उन्हें त्यागकर अवशिष्ट अंशोंसे क्या सिद्धान्त निकलता है इसका विचार करना चाहिए। 'सु' का अर्थ है उत्तम और उत्तमका अर्थ है सुखात्मक अथवा आनन्ददायक। परन्तु मनुष्यको आनन्द अथवा सुख इतनी भिन्न भिन्न रीतियोंसे मिल सकता है कि यदि केवल "सुख अथवा आनन्द देनेवाले शब्द-प्रबन्ध" को सुभाषित मानने लगें तो हमें अनेकबार शुद्ध अप्रयोजकताका दोषी बनना पड़ेगा। मनुष्यको सुख अथवा आनन्द दो तीन प्रकारसे मिल सकता है, जिनमेंसे एक प्रकार मनोविकारोंका समाधान है। नीचे लिखे हुए शब्दप्रबन्धोंसे मनोविकारोंका समाधान अवश्य होता है, परन्तु कोई विवेकवान् मनुष्य उन्हें कदापि सुभाषित न कहेगा। वे शब्दप्रबन्ध इस प्रकार हैं:—अपने सबसे छोटे लड़केके मुँहसे 'बाँ' 'बाँ' (वह शब्द जिसे लड़के होठोंको बारबार हाथसे थपथपाते हुए

निकालते हैं) शब्द सुननेसे वात्सल्य भावकी जाग्रति होती है जिससे समाधान होता है। प्रेमकलहके समय स्त्री-पुरुष एक दूसरेको जो विशेषण देते हैं अथवा जिन शब्दोंसे वे एक दूसरेको सम्बोधन करते हैं उनसे रतिभाव उद्दीप्त होता है। जब हम देखते हैं कि हमारे शत्रुको कोई गाली दे रहा है तब उन गालियोंका सुनना भी मनको अच्छाही लगता है। परीक्षाफलके प्रकट होते समय यूनिवर्सिटीके रजिस्ट्रारके मुखसे अपना नाम सुनकर भी आनन्द होता है। नई उपाधि पाने पर उससे संयुक्त अपने नाम का उच्चार सुनकर बड़ा ही आनन्द मिलता है; इसका अनुभव युनिवर्सिटी तथा सरकारके उपाधिधारियोंको अवश्य ही होगा। घुड़दौड़में अपने घोड़ेके औवल नम्बर होनेका तार पढ़कर अथवा लाटरीके अपने टिकटपर इनाम मिलनेका संवाद सुनकर स्वभावतः ही आनन्द होता है। इन सब उदाहरणोंमें अन्तःकरणका भाव प्रदीप्त होनेसे सुख मिलता तथा आनन्दानुभव होता है। परन्तु इतनी ही बातसे इन उदाहरणोंसे सम्बन्ध रखनेवाले शब्दप्रबन्धोंको कोई विवेकी मनुष्य सुभाषित न कहेगा।

(२४) उपर्युक्त उदाहरणोंके सम्बन्धमें शायद कुछ लोग यह कहें कि उन सभी स्थलोंपर आत्मकल्याणका सम्बन्ध रहनेके कारण आनन्द अथवा सुख मिलता है। ठीक है। तो फिर अब ऐसे शब्दप्रबन्ध लेने चाहिए जिनका अपने हिताहितसे कोई विशेष सम्बन्ध न हो, बल्कि जो केवल कल्पना शक्तिपर प्रभाव डालकर सुखोत्पादक होते हों। पर क्या ऐसा शब्द-प्रबन्ध भी सुभाषित कहलानेका अधिकारी समझा जा सकेगा? समाचार-पत्रोंमें नित्य इतने चमत्कारपूर्ण समाचार छपा करते हैं जिन्हें पढ़नेसे कल्पनाशक्तिको बड़ाही आनन्द मिलता है। "अमुक

गाँवमें एक भैंसने चार बच्चे दिए : उन सबके दो ही दो पाँव हैं पर सिर एककी जगह दो हैं।" "सूरतमें १२ घंटेमें १४ इंच पानी बरसा ; सड़कोंपर नावें चल रही हैं।" "अमुक साहब पीपेमें बैठकर और उसका मुँह बन्द कराके नयागराके जलप्रपातसे पार हो गए।" "डेन्मार्कके राजा और रानीमें गृहयुद्ध हुआ जिसमें राजा आहत हुए।" "बोअरोंके कड़े पहरेसे विशेष वर्जित अँधेरी रातमें निकल भागे।" इत्यादि संवाद सुनकर हमें कितना मजा मिलता है। परन्तु जिन शब्दप्रबन्धोंमें संवाद ग्रथित होते हैं, क्या उन्हें कभी कोई सुभाषित कहेगा?

(२५) जो शब्द-प्रबन्ध कल्पनाका उद्देश्य करके नहीं लिखे जाते, बल्कि जिनका लक्ष्य मनुष्य मात्रकी बुद्धिकी ओर होता है उनसे भी बहुत कुछ सुख मिलता अथवा आनन्दका अनुभव होता है। और बुद्धि-शक्तिके समाधानसे उत्पन्न होनेवाला आनन्द पूर्वोक्त दोनों प्रकारके आनन्दों—अर्थात् अन्तःकरणके भावों अथवा कल्पना शक्तिके समाधानसे उत्पन्न होनेवाले आनन्दों—की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है। परन्तु नीचेके उदाहरणसे हम यह सिद्ध करेंगे कि निरे ज्ञानप्रद शब्दप्रबन्ध 'सुभाषित' नामके अधिकारी हैं अथवा नहीं। अंकगणित शास्त्रका एक सिद्धान्त है कि दो और दो मिलकर चार होते हैं—और अङ्कके धर्म्मका विचार करनेवाले शास्त्रकी दृष्टिसे इस सिद्धान्तका भी महत्त्व है। इसीतरह यह सिद्धान्त भी चमत्कारजनक सा है—"शून्यको शून्यसे भाग देनेसे भाग-फल अनिश्चित संख्या में प्राप्त होगा।" अथवा और उदाहरण लीजिये—"सूर्यका पृष्ठभाग धब्बेदार है" "चन्द्रमामें मनुष्य बसते हैं" "ग्रहणका कारण आकाशस्थ लोग तथा पृथ्वीका भ्रमण है" इत्यादि। कौन कहेगा कि इन बातों में आनन्द नहीं

है ? फिर भी यदि इन शब्दप्रबन्धोंको सुभाषित कहने लगें तो यूक्लिडकी भूमिति, हाल तथा नाइटके बीजगणित आदि पुस्तकोंको सुभाषित-संग्रह ही कहना पड़ेगा। इनसे ऊँचे दरजे के शुद्ध शास्त्रीय ग्रन्थों का विचार करने से भी यही फल निकलेगा। हर्शलका ज्योतिष शास्त्र, न्यूटनकी प्रिन्सिपिया अथवा ज्योतिष शास्त्रके चमत्कारों का वर्णन करनेवाली अन्यान्य पुस्तकोंसे बुद्धि-शक्तिके समाधान के साथ साथ सुख तथा आनन्द की भी प्राप्ति होती है। परन्तु क्या कोई उनके सिद्धान्त प्रतिपादक वाक्योंको सुभाषितके उदाहरणरूपमें सम्मुख रख सकेगा ? इतिहासमें भी ऐसे सत्यप्रमेयोंकी कमी नहीं है। और उनका मनुष्य मात्रसे सम्बन्ध होने के कारण इतिहासके अध्ययनसे जितना आनन्द मिलता है उतना शायद शास्त्र-रहस्य-वर्णन पढ़नेसे भी न मिलेगा। परन्तु इतिहासके ज्ञानप्रद शब्द-प्रबन्धोंको कोई सुभाषित नहीं कहता। यही बात नीति सम्बन्धी शिक्षा देने वाले तात्त्विक ग्रन्थों के विषयमें भी समझनी चाहिये। वेदान्त-ग्रन्थ, साक्रेटिस के प्लेटो द्वारा लिखित सम्भाषण, पर्वत परसे किए हुए क्राइस्टके बाइबिलके उपदेश, अथवा अपने यहाँका गीताशास्त्र अथवा योगवासिष्ठको बोधप्रद वार्त्ताओंके संग्रह आदिमें से किसी एकको भी सुभाषित-ग्रन्थ नहीं कह सकते।

(२६) उल्लिखित उदाहरणोंके सम्बन्धमें कुछ लोग यह आक्षेप कर सकते हैं कि उनमें कथित विषय बोधप्रद, ज्ञानप्रद अथवा कल्पना-शक्तिको आनन्द देनेवाला तो अवश्य होता है परन्तु कोई शब्द-प्रबन्ध केवल विषय-चमत्कार हीसे सुभाषित नहीं हो सकता; जिन शब्दोंके द्वारा उस विषयका प्रतिपादन किया गया हो उनमें भी चमत्कार होना आवश्यक है। तो फिर शुद्ध शब्द-चमत्कारवाले उदाहरण भी लेकर देख लीजिए।

सबसे पहले चमत्कारके अर्थ ही पर विचार करना चाहिए। चमत्कारका अर्थ एक तरहकी विपरीतता है। जो वस्तु जैसी है उसको वैसी ही देखनेमें कोई चमत्कार नहीं होता। सीधी तरह जैसे साफा बाँधा जाता है वैसे बाँध कर जब आप निकलते हैं तब आपपर प्रतिदिन रास्तेमें जाते आते सैंकड़ों मनुष्यों की निगाहें पड़ती हैं; परन्तु क्या आपके साफेकी ओर किसी की दृष्टि विशेष रूपसे आकर्षित होती है? पर उसी साफेको एक दिन उलटा पहन लीजिए—कलँगी आगेके बदले पीछे कर दीजिए अथवा साफे के छोरको जमीनसे घसिटता हुआ रखिए—बस फिर देखनेवालोंको उसमें चमत्कार मालूम होगा और आपपर उनकी निगाहें पड़ने लगेंगी। इससे तात्पर्य्य यह निकला कि चमत्कारका मूल कारण सामान्य क्रमका विरोध अथवा विपर्यास है। तो अब यह देखना बाकी रहा कि निरे शब्द-चमत्कार की सहायतासे किसी शब्द-प्रबन्धको सुभाषित बना सकते हैं अथवा नहीं?

(२७) शब्द चमत्कारके अनेक प्रकार हैं। परन्तु हम उसके मूल से आरम्भ करके शाखाकी ओर अग्रसर होंगे। शब्द-चमत्कार का सबसे सरल उदाहरण अक्षरस्खलन है। हम सदा अक्षरोंका स्पष्ट तथा एक अक्षरका एक ही प्रकारसे उच्चारण सुना करते हैं। इसलिये जब कोई मनुष्य तुतलाकर बोलता है, 'र' के स्थानपर 'द' कहता अथवा हकलाता हुआ 'मेरा' शब्दको 'मे-मे-मे-मे-मेरा' कहता है तब वह एक तरहपर सामान्य क्रमका विरोध अथवा विपर्यास ही करता है। परन्तु ऐसे चमत्कारिक शब्द-प्रबन्धोंको कदापि कोई सुभाषित नहीं कहेगा। अब अक्षरोंकी उलटापलटी या उनके एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचाए जानेका उदाहरण लीजिए। 'घाम गाँवके ठाकुर' के स्थानपर 'ठाम गाँवके घाकुर' कहनेमें शब्दचमत्कार है;

पर इसे सुभाषित नहीं कह सकते। 'हलधरके घरपर' के बदले 'घरघरके हलपर' अथवा जिनमें सम्पूर्ण शब्दों ही को इधरसे उधर कर दिया गया हो जैसे,—'सवेरे नदीपर गया था, वहाँ एक शेर आ पड़ा; फिर क्या मेरे देवता कूच कर गए; नदी (धोती) को कन्धेपर डालकर मैं धोती (नदी) के किनारे किनारे भाग चला' अथवा—प्रश्न—"क्या जी सन्नू (गन्नू) गोनार (सोनार) क्या करते हो?" उत्तर—"सरकार सानी (माटी) माटते (सानते) हैं।" अथवा "क्यों रे सूत (नीम) तले नीमती (सूतती) है?" आदि उदाहरणोंकी भी वही बात है। इनपर यह आक्षेप होगा कि ये विभ्रमसे उत्पन्न चमत्कारके उदाहरण हैं। अच्छा तो जान बूझकर बनाए हुए चमत्कारों के उदाहरण देखिए। बोलने अथवा लिखनेमें एक ही वर्ण बार बार विशेषतः निश्चित अन्तरके बाद आना नित्यक्रमके विरुद्ध है; क्योंकि नित्यके लिखने या बोलनेमें वैसा नहीं होता। अतएव पूर्वोक्त प्रकारसे किसी वर्णके बार बार आनेमें चमत्कार होना सिद्ध है। चित्रकाव्यमें इस तरहके बहुतेरे उदाहरण मिलते हैं। उनमें सबसे सहज उदाहरण 'यमक' का है। यमकका अर्थ है "अक्षरोंकी क्रम सहित आवृत्ति" अर्थात् एक ही क्रमसे कुछ अक्षर बार बार पड़ें पर उन सबका भिन्न भिन्न स्थानोंमें अर्थ अलग अलग हो। यथा,—बारनते बारन कहूँ होत जु बारन नाहिं। लागी बार न बधन रिपु इन्हैं सुवा रन माहि॥ एक ही वर्णका चरणान्तमें नहीं किन्तु चरणके मध्यमें एकसे अधिक बार आना अनुप्रास कहलाता है। जरा इसकी व्यापकता का भी नमूना देखिए—

कल्पान्त क्रूरकेलिः क्रतु कदन करः कुन्द कर्पूरकान्तिः।
क्रीड़न् कैलासकूटे कलित कुमुदिनी कामुक कान्त कायः॥

केकाल क्रीड़नोत्कः कलित कलकलः काल कालीकलनः ।
कालिन्दी कालकंठः कलयुत कुसलं कोऽपि कापालिकोनः ।

कितने ही पद्य तो दो ही तीन अक्षरोंमें समाप्त हुए हैं। जैसे—

नमामि मा मनोनुज्ञ मानं मुनि म मानिनं ।
नाना मम ममा नाम मों नामान मुमेन मुम् ॥

अथवा—

तार तार तरैरेतै रुत्तरोत्तरतो रुतैः ।
रतार्त्ता तित्तिरी रौति तीरेतीरे तरौ तरौ ॥

किरातके पन्द्रहवें सर्गमें एक ऐसा श्लोक है जिसकी रचना आदिसे अन्ततक एक ही अक्षरकी बारहखड़ीमें की गई है—

ननु ननुन्नो नुन्नानो नाना नाना नना ननु ।
नुन्नो नुन्नो ननुन्नोनो नानेना नुन्न नुन्नवत् ॥

परन्तु व्युत्पत्ति-ज्ञानके ऐसे प्रदर्शनको कौन सुभाषित कहेगा?

(२८) चित्र-काव्यमें भी चमत्कारिताके उदाहरण विद्यमान हैं। हम सदा जो कुछ बोलते अथवा लिखते हैं वह एक ही साँचेका ढला हुआ नहीं होता। प्रत्येक वाक्यका बराबर या उतना ही लम्बा अथवा उसी आकारका होना नित्यक्रमके विपरीत है। इसलिये निश्चित लम्बाईके ऐसे वाक्य जिनके वर्ण उन्हें विशिष्ट आकार देनेमें सहायक हों, अवश्य ही चमत्कार-जनक होने चाहिएँ। संस्कृत चित्रबंध काव्यमें ऐसी चकत्कारिता उत्पन्न करनेवाले अनेक बन्ध अथवा साँचे हैं। उनमें नाग, पद्म, गज, चक्र, छत्र, चामर, मर्दल, रथ, गोमूत्रिका, चतुरंग, मयूर, क्षीर, हार इत्यादि बन्ध प्रसिद्ध हैं। ऐसे बन्ध अँगरेजीमें भी हैं।

इनके उदाहरण झंडबंध, पक्षबन्ध, कुठारबन्ध, (तमाकूकी) नालिकाबन्ध इत्यादि हैं। परन्तु इन सब प्रकारोंमें चमत्कार केवल शब्दात्मक है और इसतरहके पद्य निठल्ले तथा शब्दब्रह्मके क्लिष्ट रहस्यकी खोज करनेवाले लोग ही प्रायः लिखते हैं। इनसे सहृदय मनुष्यको आनन्द मिलना असम्भव है। इनसे हास्य रसोत्पत्ति अथवा ज्ञानप्राप्ति आदि कुछ भी नहीं होती और इन्हें कोई सुभाषित भी नहीं कहता।

(२९) सुभाषित कहलानेके दावेदार कुछ ऐसे शब्दप्रबन्ध भी हैं जिनमें शब्द-चमत्कारके अतिरिक्त और भी कुछ मानना पड़ता है। अतएव उनको असुभाषित सिद्ध करना कुछ कठिन होता है। वे हैं—समस्यापूर्त्तिके श्लोक, प्रहेलिका, कूटश्लोक, गुप्त पदश्लोक, मात्रा-च्युतक, बिन्दु-च्युतक, अक्षर-च्युतक, विराम-च्युतक, अन्तरालाप, बहिरालाप इत्यादि। इन सभीका सुभाषितमें अन्तर्भाव माना गया है और इन्हें सुभाषितरत्न-भाण्डागारमें स्थान दिया गया है। इसलिये इनका एक एक उदाहरण देनेसे पृष्ठ हो जायगा कि सुभाषितके लक्षण इनपर कहाँतक चरितार्थ होते हैं।

समस्या—इसमें श्लोकका एक और प्रायः अन्तिम अथवा प्रथम चरण दे दिया जाता है और उसीके सहारे तीन और चरण बनाने पड़ते हैं। दिए हुए चरणका अर्थ सरसरी तौर पर चमत्कारिक अथवा असम्बद्ध जान पड़ता है। परन्तु उसका समर्थन शेष चरणोंसे करना पड़ता है। "मृगात् सिंहः पलायते"—इस चरणसे मृगके मुकाबिलेमें सिंहके भाग जानेका असम्भव या विपरीत सा अर्थ निकलता है। परन्तु "असमाने समानत्वं भवता कलहे मम" अर्थात् मेरी तेरी लड़ाई बेजोड़की लड़ाई

होगी तथा तुझसे लड़ना मेरे लिये अपमानकारक है ; इसलिये मैं भाग जाता हूँ" इस अर्थका चरण उसमें जोड़नेसे उपर्युक्त समस्या—

असमाने समानत्वं भवता कलहे मम ।
इति मत्वा ध्रुवं मानी मृगात् सिंहः पलायते ॥

इस श्लोकमें पूर्ण हुई। पर स्वयं समस्यापूर्णक्रियामें जो चमत्कार है वह सुभाषितके ढंगका नहीं है। अतएव समस्या सुभाषित नहीं है। समस्यामें मुख्य ध्यान उसके एक चरणगत अर्थके समर्थन करनेवाले तीन और चरण तैयार करनेकी ओर होता है और इस कारण अर्थचमत्कारकी उत्पत्ति या अनुत्पत्तिमें सन्देह ही रहता है। उदाहरणार्थ समस्यापूर्त्तिका विषय यदि इस प्रकार हो कि "राहुर्दिवा ग्रसति पर्वविना किलेन्दुं" अर्थात्- "ग्रहण-पर्व-काल न होते हुए भी दिनमें राहुने चन्द्रको ग्रस लिया।" तो इसमें नीचेके तीन और चरण जोड़नेसे इसके विपरीत अथवा असम्भव अर्थका समर्थन हो जाता है—

काचित् दिनार्धसमये रविरश्मितप्तां
नीलां शुकांचलनिलीन मुखेन्दुविम्बां ।
तां तादृशीं समनुवीक्ष्य कविर्जगाद ।
"राहुर्दिवा ग्रसति पर्वविना किलेन्दुः" ॥

कोई सुन्दर स्त्री ठीक दोपहरमें कहीं जा रही थी। सूर्यकी प्रखर किरणोंसे सन्तप्त होकर उसने अपने चन्द्रबिम्बसरीखे मुखको नीले शालूके अञ्चलसे ढक लिया। मुख और चन्द्रमें सदाही उपमेयोपमान सम्बन्ध होता है इसलिये इस स्थानपर

"ऐन दोपहरमें और पर्वकाल न होते हुए भी राहु ने चन्द्र को ग्रस लिया"—इस विपरीत अर्थका समर्थन हुआ। परन्तु आशा नहीं है कि इसे कोई सुभाषित कहेगा।

प्रहेलिका (पहेली)—विदग्ध-मुख-मंडनमें इसका यह लक्षण दिया हुआ है—व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनात्। यत्र वाह्यान्तरावर्थौ कथ्येते सा प्रहेलिका॥" अर्थात् प्रहेलिका वह है जिसमें दो अर्थ हों—एक बाह्य, दूसरा आभ्यन्तरिक; परन्तु वास्तविक अभिप्राय गुप्त रखने के लिये इनमें से कोई एक अर्थ व्यक्त और दूसरा अव्यक्त रखा गया हो। इस व्याख्याके अनुसार प्रहेलिकाका श्लेषात्मक होना—चाहे वह श्लेष शब्दका हो अथवा अर्थका—तथा उससे निकलनेवाले दो अर्थोंमेंसे एकका प्रकट और दूसरेका गुप्त होना आवश्यक है। निरे शब्दश्लेषमें कोई अर्थचमत्कार नहीं होता और इसलिये शब्दश्लेषात्मक प्रहेलिका सुभाषित नहीं हो सकती। प्रहेलिका और कूटप्रश्नमें कोई बहुत अन्तर नहीं है। सुभाषितकी व्याख्यामें न आनेवाले कूटप्रश्नका उदाहरण नीचेका श्लोक है—

द्वन्द्वोहं द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययी भावः।
तत्पुरुष कर्म्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः॥

एक ओर तो इसमें समासोंके नाम कहे गए हैं। पर इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार है—मैं द्वन्द्व हूँ अर्थात् मैं अकेला नहीं किन्तु स्त्री सहित हूँ; द्विगु हूँ अर्थात् घरमें दो गौएँ भी हैं; अव्ययी भाव हूँ अर्थात् घरमें खर्च करनेको कुछ नहीं है; स्त्री तथा दो गौओंका किस तरह भरण पोषण करूँ? तत्पुरुष अर्थात् हे सज्जन, 'कर्मधारय' अर्थात् मुझे ऐसा कोई काम

बताओ जिससे मैं बहुव्रीहि अर्थात् धनधान्ययुक्त हो जाऊँ। हिंदीमें एक कूट प्रश्न है:—

सारी गुदड़ी जलगई जला न एको तागा।
घरके मालिक पकड़े गए और घर खिड़की हो भागा॥

इसका उत्तर है—मछली पकड़नेका जाल। सारा जाल जलमें डाला गया (पर उसका एक भी तागा न जला, क्योंकि वह जलमें डाला गया था, अग्निमें नहीं); घरकी मालिक मछलियाँ तो पकड़ी गईं परन्तु स्वयं घर (पानी) खिड़की (जालके छेद) में से होकर निकल गया।

क्रियापदगुप्त—इसमें प्रत्यक्षमें क्रियापद गुप्त जान पड़ता है परन्तु कुछ संधियोंका विग्रह अथवा समस्त पदोंका पृथक्करण वा शब्दश्लेषोंका स्पष्टीकरण करनेसे क्रियापद निकल आता है। जैसे—

पंपासरसि रामेण सस्नेहं सविलासया।
सीतया किं कृतं सार्धं रामैवोत्तरमीक्ष्यताम्॥

इसमें "सस्नेह" शब्द श्लिष्ट है। उसका 'सस्ने हंसविलासया' पदच्छेद करनेसे 'सस्ने' शब्द निकलता है। 'सस्ने' का अर्थ है 'स्नान किया'। अर्थात् पम्पासरोवरमें रामने विलासिनी सीताके सहित स्नान किया। इसमें शब्दश्लेषको छोड़कर और कोई आनन्ददायक बात नहीं; अतएव इसे सुभाषित नहीं कह सकते। कर्तृगुप्त, कर्मगुप्त, करणगुप्त, सम्प्रदानगुप्त, अपादानगुप्त, सम्बन्धगुप्त, अधिकरणगुप्त, कर्तृक्रियागुप्त, कर्तृकर्मक्रियागुप्त,

सन्धिगुप्त, समासगुप्त, लिंगगुप्त, सुब्वचनगुप्त, लिङ्वचनगुप्त इत्यादिके विषयमें भी यही बात समझनी चाहिये।

मात्राच्युतक—इसमें किसी शब्दकी कोई मात्रा कम कर देनेसे ही उसका अर्थ औरका और हो जाता है तथा अन्य शब्दोंका भी अर्थ नवीन शब्दार्थके अनुसार बदला जा सकता है। जैसे—

तुषारधवलः स्फूर्त्तन् महामणिधरोऽनघः।
नागराजो जयत्येकः पृथिवी धरणोत्तमः॥

इसमें नागराज शब्दका एक अर्थ 'शेषनाग' होता है। किन्तु इसकी एक मात्रा घटाने अर्थात् नागराजका 'नगराज' करनेसे हिमालय अर्थ होता है तथा अन्य शब्दोंके अर्थ भी हिमालय-वर्णन-विषयक हो जाते हैं। शेष तथा हिमालय दोनों तुषारधवल कान्तिवाले हैं। प्रथमकी कान्ति तुषारसरीखी श्वेत और द्वितीयकी तुषारके कारण श्वेत है। प्रथम महामणिधर अर्थात् मस्तकमें सुबृहत् नागमणि धारण करनेवाला है, दूसरा गर्भ (खानि) में बहुमूल्य रत्नोंको धारण करनेवाला है। शेष और हिमालय दोनों पृथ्वीके धारण करनेमें समान रूपसे समर्थ हैं। यही बात विन्दु-च्युतक आदिकी भी है। उनके स्वरूपोंमें विशेष अर्थचमत्कार नहीं आसकता।

अन्तरालाप—इसकी पहली तीन पंक्तियोंमें अलग अलग प्रश्न किये जाते हैं, जिन सबके पृथक् पृथक् उत्तर चौथी पंक्तिमें दिए जाते हैं, तथा इस पंक्तिके सब उत्तरोंको मिलाकर पढ़नेसे एक और ही अर्थ—जिसका उन उत्तरोंसे कोई सम्बन्ध

नहीं होता—निकल आता है। परन्तु पहली तीन पंक्तियोंसे उसका समर्थन नहीं होता। जैसे—

का शैलपुत्री, किमु नेत्ररम्यम्,
शुभार्क किं कुरुते फलानि।
मोक्षस्य दाता स्मरणेन कोवा,
गौरी मुखं चुम्बति वासुदेवः

यहाँ (१) गौरी (२) मुखं (३) चुम्बति और (४) वासुदेवः ये चारों अलग अलग प्रश्नोंके उत्तर हैं और आपसमें इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। शैलपुत्री कौन? गौरी। नेत्ररम्य कौनसा पदार्थ है? मुख। तोतेका बच्चा फलको सामने देखकर उसके साथ क्या करता है? चुम्बन करता है—चोंचसे उसका स्पर्श मात्र करता है, क्योंकि वह उसे तोड़नेमें असमर्थ होता है। और स्मरण मात्रसे मोक्ष कौन देता है? वासुदेव। इन एक दूसरेसे सम्पूर्णतः असम्बद्ध प्रश्नोंके उत्तरोंको एकत्र करनेसे पहले कहे हुए अर्थोंके विरुद्ध "गौरीमुखं चुम्बति वासुदेवः" अर्थात् वासुदेव पार्वतीका मुख चुम्बन करते हैं अर्थ निकलता है। प्रहेलिकामें ऐसे विपरीतार्थका समर्थन भी होता है; अन्तरालापमें यह नहीं होता। अतः यह शब्दप्रबन्ध सुभाषित होनेके सर्वथा अयोग्य है। यह शब्दोंका खेलवाड़ जान पड़ता है।

बहिरालाप के चार चरणोंमें अलग अलग प्रश्न किये जाते हैं और उन सबका उत्तर एक ही शब्दप्रबन्धमें देना पड़ता है। फलतः इसका सब दारमदार श्लेष और वह भी शब्दश्लेषपर ही होता है; अर्थसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। जैसे—

समयसित वदन्ति कम् निशीथम्
शमयति कान वद वारिवाह वृंदं ।
वितरति जगतां मनस्सु कोदृक
मुदमति मात्रमयं महातड़ागः ॥

निशीथ किसका नाम है ? उस कालका जिसमें सूर्य्य अविद्यमान हो (अरवि) । मेघमण्डल किसे शान्त करता है ? दवान् अर्थात् दावानलको । कैसा तड़ाग सम्पूर्ण जगतको आनन्द देता है ? अरविन्दवान् अर्थात् जिसमें कमल खिले हुए हों । इस प्रकार एक शब्द अरविन्दवान्में—अरवि, दवान् और अरविन्दवान् ये तीन उत्तर दिए गए । फलतः इसमें शब्दच्छलके सिवा अर्थचमत्कार नामको भी नहीं है । अतः स्पष्ट है कि बहिरालाप सुभाषित नहीं हो सकता । इसका एक प्रकार प्रश्नोत्तर भी है। उसमें बहिरालापकी तरह उत्तर बाहरसे ढूँढ़कर नहीं लाना पड़ता, प्रश्न और उत्तर दोनों श्लोक हीमें दिए हुए होते हैं । जैसे—

भारतं चेक्षुदण्डंच सिन्धुं इन्दुंच वर्णय ।
पादमेकं प्रदास्यामि 'प्रतिपर्वरसोदयः' ॥

प्रश्न है—भारत, इक्षुदंड अर्थात् ऊख, सिन्धु अर्थात् समुद्र, और इन्दु अर्थात् चन्द्रमा इन सबका वर्णन करो। उत्तर देनेवाला सबका एक पदमें उत्तर देता है—"प्रतिपर्वरसोदयः"। भारतके प्रत्येक पर्व में अधिकाधिक रस मिलता है ; ऊख के प्रत्येक पोर में अधिकाधिक रस (मिष्ट पदार्थ) भरा रहता है ; समुद्र में प्रत्येक तिथि को अधिकाधिक ज्वार भाटा उठता है, और चन्द्रमा भी प्रत्येक तिथि को अधिकाधिक तेजयुक्त होता है । इसका भी

मुख्य आधार श्लेष और बहुधा शब्दश्लेष ही होता है। अतः इसको भी सुभाषित नहीं कह सकते।

(३०) तात्पर्य्य यह कि उल्लिखित सब प्रकार शब्दवैचित्र्य के हैं और सहृदय मनुष्य मात्र इस बात को जानता है कि निरे शब्दवैचित्र्य से उत्पन्न चमत्कार अर्थचमत्कार की अपेक्षा कम सरस होता है। इसका कारण यह है कि शब्दचमत्कार में रहनेवाले आनन्द का पर्यवसान कानही में हो जाता है; वह बुद्धिशक्ति अथवा अन्तःकरण को आनन्दित नहीं कर सकता।

(३१) अंगरेजी में भी चित्रकाव्य, कूट अथवा शब्दश्लेष को महत्त्व नहीं दिया जाता। उसमें इन्हें False Wit की कोटि में स्थान दिया गया है। एडिसनने अपने Six Papers on Wit नामक निबन्ध में इनके बहुत से भेद लिखे हैं जो इस प्रकार हैं:—

Leppo Gramatism अथवा Letter dropping अर्थात् 'अक्षरच्युति'——इसकी खूबी यही है कि इसमें विशेष विशेष अक्षरों का नियम सहित बहिष्कार किया जाता है। Tripphiodorus नाम का एक ग्रीक कवि हो गया है। उसने Odyssey नामक एक पद्यग्रन्थ की रचना की है जिसके प्रथम सर्ग में 'अ' दूसरे में 'ब' इसी तरह २४ सर्गों में क्रम से ग्रीक लिपिके चौबीसों अक्षरों का बहिष्कार किया गया है। हमारी भाषा के केशवदास आदि आचार्यों ने 'निरोष्ठ' कविता की रचना इसी आधार पर की है। 'निरोष्ठ' कविता में पवर्गीय अक्षरों का बहिष्कार किया जाता है। इसलिये सम्पूर्ण पद्य पढ़ जाने पर भी एक होंठ दूसरे होंठ से मिलाने की नौबत नहीं आती। इसी प्रकार और भी अनेक अक्षर या मात्राएँ आदि छोड़ कर हिन्दी में कविता की जाती है।

Rebus Writing अथवा 'चित्र समस्या'—इस भेद में वाक्यके कुछ शब्द निकालकर उनकी जगह तद्दर्शक चित्र बना दिए जाते हैं। जैसे 'राम बनको गए' लिखनेकी जरूरत हो तो "राम" शब्दके आगे वनदर्शक चित्र † बनाकर उसके आगे "गए" लिख देंगे; Rose Hill नामकी एक कुमारी लड़की थी। उसपर प्रेम करनेवाले एक युवकने अपने कोटपर Rose Hill I love well. (रोज़ हिलपर मेरी अत्यधिक प्रीति है) का अर्थ सूचित करनेके लिये निम्नलिखित चित्र लिख रखे थे। Rose = स्त्रीका नाम अथवा गुलाब, इसलिये गुलाबका चित्र; Hill = वंशसूचक उपाधि अथवा पहाड़ी, इसलिये पहाड़ीका चित्र ; I का समध्वनि शब्द है Eye अर्थात् आँख, इसलिये आँखका चित्र ; Love = प्रीति , इससे मिलते जुलते उच्चारणका शब्द है Loaf अर्थात् रोटी, इसलिये रोटीका चित्र और Well=अच्छी तरह, इसका दूसरा अर्थ 'कूआँ' होता है, इसलिये कूएँका चित्र। तात्पर्य यह कि "मैं रोज़ हिलको अत्यधिक प्यार करता हूँ" न लिखकर गुलाब, पहाड़ी, आँख, रोटी तथा कुएँ इत्यादि पद-र्थोंकी चित्र-माला लिखनेवाले युवकको धन्य ही कहना चाहिए। ‡

---

† अनेक प्राचीन भाषाओंके मूलाक्षर चित्राक्षर ही थे, इससे सम्भव है कि कालान्तरमे चित्रोंके स्थानपर अक्षरोंकी योजना होनेपर भी विभेदके लिये बीचमें दो एक चित्र लिखनेकी चाल पड़ी हो—ले०।

‡ इस युवकका यह चित्र विचित्र कोट उसकी प्रेयसीने देखा अथवा नहीं, अथवा देखा भी हो तो इस विलक्षण चितेरेके मनोभाव उसके अन्तः-करण पर प्रतिबिम्बित हुए अथवा नहीं, यह सब हम नहीं जानते । परन्तु यदि इस चित्रका उसके समीपतक पहुँचना तथा उसमें थोड़ीसी कल्पनाशक्ति

Anagram—इसमें शब्दको उलटा अर्थात् पीछे की ओरसे आगेको पढ़नेसे एक और ही शब्द निकल आता है जैसे God शब्दको उलटा पढ़नेसे Dog होता है—अर्थात् 'ईश्वर' 'कुत्ते' में बदल जाता है। Anagram का दूसरा अर्थ किसी शब्दके अक्षरोंका क्रम अदल बदलकर अन्य शब्द बना लेना भी है। जैसे—Times से Smites अर्थात् 'टाइम्स' नामक प्रसिद्ध समाचारपत्रसे मारने का अर्थ प्रकट करनेवाला शब्द तैयार करना अथवा Post (डाक) से Stop (रोकना) इत्यादि।

Acrostic—इसमें विशेषता यह है कि इसमें गद्य अथवा पद्यकी प्रत्येक पंक्तिके आद्य अक्षरोंको मिलनेसे कोई सार्थक प्रबन्ध निकल आता है। प्रत्येक पंक्तिके आद्य अक्षर न लेकर निश्चित नियमानुसार बीचकी एक दो पंक्तियोंको छोड़कर शेष पंक्तियोंके उक्त अक्षर ग्रहण करनेसे भी वही परिणाम निकलता है। हिब्रू भाषामें एक ऐसा काव्य है जिसकी प्रतिपंक्तिके अक्षर अकारादि क्रमसे रखे गए हैं। कई बरस पहले यह विवाद उपस्थित हुआ था—अबतक भी जिसका अन्त नहीं हुआ है—कि शेक्सपियर के नामसे प्रसिद्ध होनेवाले कई एक नाटक वस्तुतः लार्ड बेकनके, जो लार्ड वेरूलमके नामसे प्रसिद्ध थे, बनाए हुए हैं जिनकी रचना उन्होंने शेक्सपियरके कुछ नाटकोंकी जुदा जुदा पंक्तियोंके अक्षरोंके विशेष नियमानुसार

का होना भी मानलें तो बहुत सम्भव है कि इससे उसकी समझसे निम्नलिखित अर्थ स्फुरित हुआ हो—"प्रीतिका गुलाबी रंग देखकर मैं उसमें व्यर्थ फँसा ; क्योंकि प्रेमरूपी गुलाबके काँटे मुझे चुभ गए, जिससे मैं पागल हो पहाड़ियोंपर भटकने लगा। मेरी आँखें फूट गईं और अन्तको भूखों मरता मैं कुएँमें गिर पड़ा।"

ग्रहण करके की है। Double Acrostic नामकी एक और प्रकारकी रचना होती है जिसमें किसी पंक्तिके आदि और अन्तके अक्षर लेनेसे भिन्न भिन्न शब्द बनते हैं। हमारे यहाँ हिन्दी तथा संस्कृतमें भी इस प्रकारके श्लोक हैं।

Cronogram—इसमें शब्द विशेषके कुछ अक्षर इसलिये बहुत बड़े लिखे जाते हैं कि जिसमें वे अन्य अक्षरोंमें मिलने न पावें। ये अक्षर संख्या सूचक होते हैं और इन्हें एकत्र करनेसे कालविशेषका ज्ञान या निर्णय होता है। गस्टेवस एडोल्फस नामक राजाने एक पदक बनवाया था जिसपर ये शब्द खुदे हुए थे—Chr 1st *vs.* D. V. X. ergotr IV Mph *vs.* साधारणतः ये ही शब्द इस प्रकार लिखे जाने चाहिए थे—Chritus Dux ergo Truimptuis. पहले अवतरणमें जो अक्षर विशेष बड़े हैं उन्हें एकत्र करनेसे वाञ्छित संख्या निकलती है। हमारे यहाँ भी प्राचीन कालमें असंख्यावाचक सांकेतिक शब्दोंसे संख्या सूचित करनेकी प्रथा थी। * प्राचीन ग्रन्थोंके आदि अथवा अन्तमें जब सम्वत् देना होता था तब इन संख्यासूचक सांकेतिक शब्दोंद्वारा उसे प्रकट किया जाता था जैसे,—रुद्र (११), आदित्य (१२), दिक् (८), पाण्डव (५) इत्यादिक और "अङ्कानां वामतोगतिः" के नियमानुसार उन शब्दोंसे सम्वत् निकालना पड़ता था।

Bouts-rime—इसमें पहलेसे दिए हुए अन्त्यानुप्रासोंपर पद्योंके चरण तैयार किए जाते हैं। प्रतिभाके बिना कविता करनेका यह एक उत्तम साधन है। कविताके लिये यमककी आवश्यकताके बदले यदि यह माना जाय कि यमकके लिये

* प्राचीन ढंगके कवि अब भी इस प्रथाको काममें लाते हैं—अनु०।

कविताकी आवश्यकता है तो मानों शब्द-पाण्डित्यकी कुश्तीमें कविताका महत्त्व एक पकड़ अथवा पेंचके बराबर होगा ।

Foragram अथवा Pun—अर्थात् केवल शब्दात्मा चीज। इसमें बहुधा श्लेषकी सहायता आवश्यक होती है ।

Epigram—यह शब्द चित्रात्मक होता है । इसकी खूबी यह है कि एक ही शब्द-प्रबन्धको सीधा और उलटा पढ़नेसे दो भिन्न अर्थ निकलते हैं । Witches Prayer नामका एक शब्द-प्रबन्ध है ; उसे बाईं ओरसे पढ़ें तो वह आशीर्वचन होता है और दाहिनी ओरसे पढ़ें तो शापवचन निकलते हैं । हिन्दी अथवा संस्कृतमें इसे लोम विलोम कहते हैं जो चित्रकाव्यके अन्तर्गत है । †

इनके सिवा अँगरेजी चित्रकाव्यके Cliuches, Comindrum, Place, Antanaclacis नामक और भी कई छोटे मोटे भेद हैं । इनमें अर्थचमत्कारका सर्वथा अभाव है । इनमें दो बातें होती हैं—एक तो थोड़ासा शब्दश्लेष और दूसरे बड़ी खींचतानसे उत्पन्न किया हुआ नाम मात्रका चमत्कार जिससे केवल गँवार तथा अनजान लोगोंको आनन्द मिल सकता है ।

---

† नीचे लिखे छन्दमें मानों इसको चरम सीमातक पहुँचा दिया गया है:—

सैनन माधव ज्यों सरके सब देख सुवेसु सबै । नेनबकी तचिजी तसनी रुचि चीर सबै निमि काल फलै । तै न सुनी जस भीर भरी धरि धीर बरी तसु कोन बहै । मैन मनी गुरु चाल चलै सुभ सो बनमें सरसी बलसै ॥

इसे उलटकर पढ़िए तो नीचे लिखा छन्द निकलता है:—

सेल बसी रस में नब सोभ सुलै चल चारु गुनी मन भै । है बनको सुतरी बर धीरि धरी भरभी सजनी सुनतै ॥ लै फल कामिनि बेस रची चिरु नीरु तजी चितकी बननै । बैस सुबेसु सुवेश खरे बरुके रस ज्यों वध मान नसै ॥

(३२) उल्लिखित उदाहरणोंसे यह बात समझमें आ गई होगी कि शब्द चमत्कार कविताकी आत्मा नहीं हो सकता, उसकी आत्मा अर्थ-चमत्कार ही है। अन्य अनेक बातोंकी तरह यथार्थ अर्थ-चमत्कार का परिणाम भी मनुष्यकी सहृदयतापर ही अवलम्बित है।

(३३ यहाँतक भाषामें रमणीयता लानेवाले एक साधन, "सुभाषित" के सम्बन्धमें विचार हुआ। अब हम उसके दूसरे साधन "विनोद" अर्थात् चोज, चतुरालाप, विनोदवचन आदिके सम्बन्धमें विचार करेंगे। सुभाषितकी तरह विनोदमें भी अर्थ-चमत्कारकी आवश्यकता होती है। दोनोंमें मुख्य अन्तर यह है कि सुभाषितके अर्थचमत्कारको हास्योत्पादक होनेकी उतनी आवश्यकता नहीं है, परन्तु विनोदका अर्थचमत्कार अवश्य हास्योत्पादक होना चाहिए।



तीसरा भाग।

चोज और विनोदवचन।

जब कहनेवाला कोई ऐसी बात कहता है जिसमें अर्थचमत्कार होता है और वह अर्थचमत्कार आत्मगुण ही से हास्योत्पादक होता है तब उस बातको चोज अथवा चतुरालाप कहते हैं। विनोदवचन और चोजमें मुख्य भेद यह होता है कि विनोदवचन जिस हास्यको उत्पन्न करता है वह अर्थचमत्कार के आत्मगुण हीसे उत्पन्न नहीं होता बल्कि उसके अन्तर्गत पदार्थोंकी परस्पर असम्बद्धता अथवा परिस्थिति और उनकी सम्मिलित असम्बद्धतासे उत्पन्न होता है। चोज और विनोदवचनका दूसरा भेद यह है कि चोज यथासम्भव थोड़ेसे थोड़े शब्दोंमें ग्रथित होता है। Brevity is the soul of wit (Shakeshpeare)! जितनेही कम शब्दों में चोज ग्रथित होता है वह उतना ही अधिक आनन्ददायक होता है। लेकिन विनोद में यह बात नहीं है। एक दो वाक्यों अथवा वचनोंमें उसकी पूर्णता अथवा पक्वता बहुत ही कम होती है। परिस्थितिजन्य असम्बद्धतापर अवलम्बित होनेके कारण जितने ही लम्बे वाक्यमें उसका ग्रन्थन हो उससे उतना ही अधिक आनन्द मिलता है। यह भेद अन्य रीतियोंसे भी व्यक्त किया जा सकता है। चोजका सम्बन्ध बहुधा बुद्धि तथा कल्पनासे होता है और विनोदका सम्बन्ध मनोभावोंसे होता है। चोजमें बुद्धितेज झलकता है और विनोदमें मनोविकार जाग्रत होता है और उसके द्वारा हृदयमें अर्थ प्रवेश करता है। एक और दृष्टिसे यह

कह सकते हैं कि चोजका आनन्द उसकी चपलतामें होता है। सुरंगकी तरह इसका वार इतना अचानक होता है कि उसके हो जानेपर सुननेवाला आश्चर्यसे हक्का बक्का हो जाता है। वह सोचने लगता है कि एकाएक हमारी बुद्धिपर यह कहाँसे डाका पड़ा। क्षणभर चमककर फिर अदृश्य हो जानेवाली विद्युत्ज्योति की तरह चोज हमारी बुद्धिको चकित कर देता है। जिस बातको यों स्वीकृत करनेमें हम बीसियों आपत्तियाँ करते हैं वही बात यदि चोजके द्वारा हमारे मनतक पहुँचाई जाय तो हम उसे झट मान लेते हैं। चोजका आदि तथा अन्त दोनों एक ही क्षणमें होते हैं। और यह आवश्यक भी है। चोज इच्छापूर्वक नहीं कहा जा सकता; वह लिखने या बोलनेमें अनायास कलम या मुँहसे निकल आता है। चोज जिस मौकेपर कहा जाता है वह मौका भी जान बूझकर कोई नहीं ला सकता; वह भी अचानक ही आ पड़ता है। चोज कहनेमें सिद्धहस्त फ्रेंच प्रहसनकार 'मॉलियर' के मतसे प्रत्युत्पन्नमतित्व ही चोजकी सच्ची कसौटी है--"Improptu is precisely the touch-stone of wit." उपस्थित-बुद्धिवाला मनुष्य ही चोज कहनेमें समर्थ हो सकता है। मौका निकल जानेपर सूझा हुआ चोज बारातके पीछे चलनेवाले घोड़ेकी तरह हास्योत्पादक नहीं; बल्कि हास्यास्पद भी होता है। विनोदवचनोंकी यह बात नहीं है। विनोदका ज्ञान पूर्णतया एक क्षणमें नहीं होता। वह धीरे धीरे होता है और ज्यों ज्यों विनोदकारक परिस्थितिका वर्णन बढ़ता जाता है त्यों त्यों विनोदका रंग गहरा होता जाता है। किसी दीपककी लौमें जितनी उष्णता होती है उतनी उष्णता यदि एक लोटेभर जलमें भरी जा सके तो चोजकी हास्यशक्ति लौ की उष्णताके समान केन्द्रीभूत और विनोदवचनकी हास्य-शक्ति लोटेभर पानीमें फैली हुई उष्णताके समान मानी जायगी।

विनोदपूर्ण प्रबन्धोंके प्रख्यात लेखक मार्क ट्वेन (Mark Twain) ने इसी भेदका एक स्थानपर एक दूसरी रीतिसे वर्णन किया है। How to tell a story अर्थात् "कहानी किस प्रकार लिखनी या कहनी चाहिए" शीर्षक एक छोटेसे लेखमें उसने नीचे लिखे अनुसार अपनी सम्मति दी है—

The humorous story is American, the Comic story is English, the Witty story is French. The humorous story depends for its effect upon the manner of the telling; the comic story and the witty story upon the matter. The humorous story may be spun out to great length and may wander around as much as it pleases and arrive no where in particular; but the comic and witty stories must be brief and end with a point. The humorous story babbles gently along the author's burst. The humorous story is strictly the work of art—high and delicate art—and only an artist can tell it, but no art is necessary in telling the comic and witty story; anybody can do it. The humorous story is told gravely, the teller does his best to conceal the fact that he eventually suspects that there is any thing funny about it; but the teller of the comic story tells you before hand it is one of the funniest things, he has ever heard, then tells it with eager delight and is the first person to laugh when he gets through. And sometimes if he has had

good success he is so glad and happy that he will repeat the nub of it and glance around from face to face collecting applause and then repeat it again."

(३५) चोज अथवा चतुरालापकी संक्षिप्त व्याख्या "भिन्न भिन्न वस्तुओंके ऐसे सम्बन्धोंको प्रकट करना जो चमत्कारिक तथा अनपेक्षित हों" होसकती है। इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष होने-वाले पदार्थोंके सम्बन्धका ज्ञान ही मनुष्य मात्रका मुख्य ज्ञान है। किसी छोटेसे छोटे अर्थबोधक वाक्यमें भी कर्त्ता, क्रिया तथा कर्मका सम्बन्ध अवश्य प्रकट किया हुआ रहता है। सभी पदार्थोंके सभी सम्बन्ध चमत्कारजनक नहीं हो सकते। उदाह-रणार्थ देवमन्दिर और देवमूर्तिकी कल्पनाका सम्बन्ध, प्रतिदिन भोजन कालमें जुड़नेवाले हाथ और मुखकी कल्पनाका सम्बन्ध, गाड़ी और घोड़ेकी कल्पनाका सम्बन्ध इत्यादि प्रतिदिन हमारे देखनेमें आते हैं तथापि उनमें किसीको कोई चमत्कार नहीं मालूम होता। परन्तु इन सम्बन्धोंमें अन्तर पड़ने से ही हमारा ध्यान उस ओर खिंचता है। मनुष्य और मरणका सम्बन्ध नित्य है अतः "मनुष्य मरणशील प्राणी है" इस कथनमें किसी को कुछ भी चमत्कार नहीं मालूम होता। परन्तु मनुष्य और बालूकी घड़ीका सम्बन्ध साधारण व्यवहार में अपरिचित है इसलिये यदि कहा जाय कि "मनुष्य बालूकी घड़ीके समान है, क्योंकि जिस तरह इसके सब कण अलग हो होकर सारी बालूको खतम कर देते हैं उसी तरह मनुष्यकी आयु भी क्रमशः क्षीण होकर एक दिन शेष हो जाती है" तो इससे यद्यपि मनुष्य के मरणशील होनेकी चिरपरिचित कल्पना की ही सत्यता सिद्ध होती है तो भी यह सिद्धि अधिक प्रभावोत्पादक होती है

और कल्पना-विलासका आनन्द मिलता है। सम्बन्धका अनपेक्षितत्व अथवा चमत्कारिकता चीजकी आत्मा है इसलिये इसमें जरा भी कमी होनेसे चीजका आनन्द कम हो जाता है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि एकबार कहा हुआ चोज दूसरी बार कहने से उतना हास्योत्पादक नहीं होता; और उत्तरोत्तर उसमें कमी ही होती जाती है। इससे सिद्ध होता है कि चोजका सारा आनन्द सम्बन्धकी नवीनता ही पर निर्भर है। चन्द्रमा देखनेमें गोल है इसलिये उसे गेंदका उपमेय माननेकी कल्पना बहुतोंके मनमें उदय हो सकती है। परन्तु उसी चन्द्रमाको यदि गेंदके बदले "चीनीके लड्डू" अथवा एक संस्कृत कविके कथनानुसार "राजयशोरूपी हंसिनीके अंडे" की उपमा दी जाय तो यह कल्पना अपरिचित तथा साधारण श्रेणीके मनुष्योंको न सूझनेवाली होनेके कारण अवश्य हास्योत्पादक होगी।

(३६) सम्बन्ध-दर्शनके विचित्र होनेके लिये कल्पना व्यक्तिशः ही नहीं जातिशः भी नवीन होना चाहिए; और केवल उन लोगोंको छोड़कर जिन्हें ईश्वरसे प्रतिभारूपी पुरस्कार मिला हुआ है औरोंको न सूझनेवाली होनी चाहिए। एक पदार्थके प्रसिद्ध गुण ही से अर्थात् जो गुण सभीकी समझसे दोनोंमें समान मात्रामें हों—सम्बंध दिखानेमें कोई विशेष चमत्कार नहीं होता। मान लीजिए कि एक साफा है जिसका रंग अंजीरकासा है। अंजीरी रंगकी प्रसिद्धिके कारण यह समता इतनी स्पष्ट है कि प्रायः सभी लोग उसके रंगकी उपमा देते समय अंजीर ही का नाम लेंगे। इसलिये साफेकी इस उपमामें कोई चमत्कार नहीं हो सकता। इसीतरह हमारे विचारसे किसी तरुण पुरुषके गौरवर्णविशिष्ट तथा पुष्ट जंघाओंके लिये केलेके खम्भेकी उपमा सुनकर भी किसीको विशेष चमत्कार नहीं मालूम हो सकता।

एक प्रसिद्ध मुलायम चीजकी उपमा दूसरी प्रसिद्ध मुलायम चीजसे, एक प्रसिद्ध सुगन्धित द्रव्यकी उपमा दूसरे प्रसिद्ध सुगन्धितद्रव्यसे, एक विशिष्ट आकारवाले पदार्थकी उपमा वैसे ही आकारवाले दूसरे बहुत प्रसिद्ध पदार्थसे देनेमें कोई विशेष चमत्कार उत्पन्न नहीं हो सकता। किन्तु उपमानभूत अथवा "अप्रस्तुत" पदार्थगुण जितना ही अप्रसिद्ध होगा अर्थात् उसे उपमानभूत माननेकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति जितनी ही कम होगी, कल्पना भी उतनी ही अधिक चमत्कारपूर्ण होगी।

(३७) परन्तु कल्पनाके चमत्कारिक होनेसे ही चोज अथवा चतुरालापकी प्रयोजन-सिद्धि नहीं होती। क्योंकि वस्तु-सम्बन्ध के चमत्कारिक होनेपर भी यदि उससे सौन्दर्य्य अथवा व्यवहारोपयोगिता मात्रकी प्रतीति हुई तो उससे हास्योत्पत्तिमें रुकावट होनेके कारण वह सम्बन्ध "चोज" नहीं हो सकता। सौन्दर्य्य-प्रतीति होनेपर कल्पनाको काव्यका स्वरूप प्राप्त होगा अतः उसे चोजकी पंक्तिमें स्थान न मिल सकेगा। व्यवहारोपयोगिताकी प्रतीति होनेसे कल्पनाकी बहार अथवा अनोखापन नष्ट हो जायगा और उसकी आकर्षकताकी हानि होगी। इसका एक उदाहरण लीजिये। यंत्रशास्त्रकी उपयोगिताके विषयमें किसी सर्वथा अनभिज्ञ मनुष्यको रेलके इंजिनके सामने यदि खड़ा कर दिया जाय और वह देखे कि इतने दुरूह तथा क्लिष्ट रचनात्मक शरीरके भाग प्राणपालक नौकरके समान किस प्रकार यथा-नियम अपने कार्य कर रहे हैं, उसके डंडे किस तरह आगे पीछे हटते और बढ़ते हैं, पहिए प्रेतके समान कैसी तेजीसे चक्कर खाते हैं, परदा किसप्रकार अपने आप उठता और गिरता है तो उसे जान पड़ेगा कि यह यंत्र ईश्वरका एक विचित्र 'चोज' ही है। परन्तु इसीको जब कोई यंत्र-शास्त्रका महत्त्व जाननेवाला

मनुष्य देखेगा तो उसके मनमें इसी प्रकारके विचार उत्पन्न होंगे कि इस प्रचण्ड यंत्रका व्यावहारिक उपयोग कितना अधिक है, इसकी सहायतासे मिलों और कारखानोंकी इमारतोंके कितनी दूरतकके तथा छोटेसे छोटे भागोंमें भी गति पहुँचती है और अन्तको इसकी बदौलत मालिकको कितना आर्थिक मुनाफा होता है आदि आदि ; और इस लिये उसे हँसी नहीं आवेगी बल्कि उसके मनमें गहन विचार-परम्पराकी उत्पत्ति होगी। केवल यंत्रशास्त्रका उपयोग न जाननेवाले लड़के अथवा खेलवाड़ी स्वभावके मनुष्य ही उपर्युक्त यंत्रको देखकर चमत्कृत होंगे और उन्हें ही हँसी आवेगी।

(३८) वस्तुओंके लिये जो नियम है वही वाक्पदार्थोंके लिये भी है। अर्थात् भाषणके अर्थचमत्कारसे हटकर उसकी गम्भीरताकी ओर ध्यान चला जाय तो वह चीज नहीं हो सकता। नीचेके उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

मृत्युं शरीरगोप्तारं वसुभाजं वसुन्धरा।
दुश्चारिणीव हसति स्वपतिं पुत्रलालनात्॥

अर्थात् "जिस प्रकार जारिणी स्त्री अपने पतिको (जारजात) पुत्रका लालन करते देखकर हँसती है उसी प्रकार मृत्यु शरीरकी अधिक देखरेख या चिन्ता करनेवाले तथा भूमिके रक्षकपर हँसती है।" इस श्लोकमें यद्यपि मृत्यु, भूमि तथा जारिणी स्त्रीकी कल्पनाओं में बड़े ही चमत्कारिक सम्बन्धका निदर्शन किया गया है तथापि इस सम्बन्ध-दर्शनसे हास्योत्पत्ति नहीं होती बल्कि पढ़नेवालेके मनपर इसमें ग्रथित भयंकर सत्यकी प्रतीति ही दृढ़तासे होती है। अतएव इसे काव्य कह सकते हैं, पर चेंज नहीं। और उदाहरण लीजिए—

पुष्पादनन्तरं स्यात्फलं लतायां प्रसिद्धमिति लोके ।
चित्रं कनकलतेयं पुष्पोद्गमतः फलद्वयं पूर्वं ॥

इसका अर्थ है—"वृक्ष-सृष्टिकी ओर दृष्टिपात करनेसे यह नियम देख पड़ता है कि फूल लगनेके अनन्तर तब फल लगता है ; परन्तु इस (स्त्रीरूपी) स्वर्णलतामें यह अद्भुत चमत्कार है कि पुष्पागमके पहले ही इसमें दो दो फलोंकी उत्पत्ति होती है।" यहाँ भी स्त्री और (वृक्ष सृष्टिमें न मिलनेवाली) लताका चमत्कारिक सम्बन्ध दिखाया गया है। परन्तु श्लोकमें जो अश्लीलता तथा स्फुट ग्राम्यता है उसके कारण सभ्य मनुष्यको उसके पढ़नेसे हँसी न आवेगी बल्कि खेद ही उत्पन्न होगा। इसलिये इसे चोज नहीं कह सकते। चमत्कारिक कल्पना भी यदि गम्भीर विचारोत्पादक हो तो वह चोज नहीं हो सकती। निम्न लिखित श्लोक इसका एक उदाहरण है।

हृदि लज्जोदरे वह्निः स्वभावादग्निरुच्छ्रि ।
तेनमि दग्धलज्जस्य पुनरागमनं नृपः ॥

अर्थ—"हे राजा, मेरे हृदयमें लज्जा है और उदरमें अग्नि। अग्निका धर्म उर्द्धज्वलन (ऊपरकी ओर ज्वाला फेंकना) है इस कारण मेरी लज्जा भस्म हो गई और मैं आपके यहाँ याचना करने आया हूँ।" इसमें कल्पना चमत्कारिक तो है पर इतनी क्लिष्ट है कि उसके समझने में जो श्रम पड़ता है उसके कारण सारा आनन्द नष्ट हो जाता है। इसीतरह जिस कथनमें अर्थचमत्कार की अपेक्षा नीतिशिक्षा अधिक हो वह भी चोज नहीं हो सकता। नीचेका श्लोक ऐसी उक्तिका उदाहरण है।

अहोबत विचित्राणि चरितानि महात्मनां ।
लक्ष्मी तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च ॥

अर्थ—"महात्मा पुरुषोंके चरित्रकी विचित्रता नहीं कही जा सकती, लक्ष्मीको वे तृणसमान मानते हैं पर वे इतने नम्र या दबे हुए देख पड़ते हैं कि मानों उनके सिरपर उसी लक्ष्मीका बहुत बड़ा बोझ हो।" इस कथनमें महात्माओंके आचरणमें ऊपरी दृष्टिसे जो असम्बद्धता देख पड़ती है उसका निदर्शन चमत्कारपूर्ण है। परन्तु यहाँ भी नीतिविचार से दब जानेके कारण चोज प्रभावोत्पादक नहीं होता। जिस कल्पनामें चमत्कारकी अपेक्षा सौन्दर्य्य अधिक हो वह कल्पना भी चोज नहीं हो सकती। इसके बहुतसे उदाहरण दिए जा सकते हैं। कादम्बरी का निम्नलिखित श्लोक लीजिए—

स्तनंयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्त्ति हृदय शोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणां॥

अर्थात्—"हे राजा तुम्हारे शत्रुओंकी स्त्रियोंको देखकर सन्देह होता है कि वे अश्रुओंसे अपने स्तनयुग्मको स्नान कराती हुई तथा विमुक्ताहार (आहार रहित—दूसरा अर्थ मुक्ताहार रहित) हो हृदयगत शोकाग्निकी उपासना तो नहीं कर रही हैं।" यहाँ "स्तनयुग्म" "साश्रुत्व" तथा "मुक्ताहार—हीनत्व" कल्पनाओं का जो सम्बन्ध दिखाया गया है वह बड़ा ही सुन्दर तथा रमणीय है। पर इस रमणीयताके ही कारण इस श्लोकको काव्यकी श्रेणीमें जगह देनी पड़ेगी। कल्पना अत्यन्त चमत्कारिक है पर तो भी उससे हास्योत्पत्ति नहीं होती। क्योंकि यहाँ शुद्ध तथा रम्य सौन्दर्य्य ही का उत्कर्ष है। और उदाहरण लीजिए—

मणिहारलता विभाति
कुच सिंहासनसीम्नितारस्थिवासं।

अभिषेक्तुमनंग देवराजं
गल शंखादुलितेव दुग्धधारा ॥

अर्थात्—तन्वीने अपने कण्ठमें जो मणिहार रूपिणी लता धारण की है उसे देखनेसे जान पड़ता है कि मानों कुचसिंहासन पर आरूढ़ कामदेवके अभिषेकके लिये शंखाकृति कण्ठसे दुग्ध-धारा निकल रही है। यहाँ हार और दुग्धधारकी कल्पनाओं में जो सम्बन्ध दिखाया गया है वह अत्यन्त चमत्कारिक तथा हृदया-कर्षक है। परन्तु इसमें शुद्ध सौन्दर्य्य प्रतीति मात्र है इसलिये यह कथन केवल काव्य हो सकेगा।

श्रीया गेहे मयारण्ये रामस्त्यक्तस्त्वया पथि।
वतमुद्रे पुरन्ध्रीणां प्रत्ययं कः करिष्यति ? ॥

सीताजी मुद्रिकाको सम्बोधित कर कहती हैं—"हे मुद्रे! राज्यलक्ष्मीने तो रामका साथ घरहीमें छोड़ा था, मैंने उन्हें बनमें छोड़ा था और तू उन्हें रास्तेमें छोड़कर यहाँ चली आई: फिर अब स्त्रियोंपर कौन विश्वास करेगा?" इसमें राज्यश्री, मुद्रिका तथा जानकीका पुरन्ध्रा स्त्रीसे जो सम्बन्ध दिख-लाया गया है वह मनोवेधक है। परन्तु यह काव्य है, चोज नहीं।

दुष्टे जगद्वपुषि भुजंगमेन
तत्रान्धकार मिषभाविरभूद्विषं यत्।
संजात लक्ष्मणि तदिन्दु परागै निपाट्य
ज्योत्स्नामये पयसि तत्क्षिपति स्मनधाता ॥

अर्थात्—"कालरूपी सर्पने संसाररूपी शरीरका दंशन करते हुए अन्धकाररूपी जिस विषको चारोंओर फैलाया था, मानों

ब्रह्मदेवने चंद्रमारूपी मणि (जहरमोहरे) से उसको सोखकर उस (सर्प) को चंद्रिकारूपी दुग्धराशिमें डाल दिया है।" यहाँ भी कल्पनाके अद्भुत होते हुए भी पूर्वोक्त कारणोंसे यह उक्ति चोज नहीं हो सकती।

(३६) खंडनपक्षमें इतने उदाहरण दे चुकनेपर स्वभावतः ही हमसे पूछा जा सकता है कि तब आखिर संस्कृत साहित्यमें चोजके समर्थक उदाहरण हैं कौनसे ? अतः हम नीचे कुछ ऐसे उदाहरण उद्धृत करते हैं जो हमारे मतसे चोज कहलानेके अधिकारी हैं—

(१) हे दारिद्र नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं नमां पश्यति कश्चन ॥

कोई दरिद्र कवि दारिद्र्यको सम्बोधनकर कहता है—"तुम्हारे प्रभावका कहाँतक वर्णन करूँ ? तुम्हारी कृपासे मैं सिद्धपदको प्राप्त हुआ हूँ—मैं सारी दुनियाको देखता हूँ पर मुझे कोई नहीं देखता।" इस श्लोकमें दरिद्र तथा सिद्ध पुरुषकी कल्पनाओं का मेल अत्यन्त चमत्कारिक रीतिसे व्यक्त किया गया है और वह हास्योत्पादक भी है; अतः यह श्लोक चोज है, काव्य नहीं।

(२) सर्वदा सर्वदोऽसि त्वं मिथ्या कथ्यसे बुधैः।
नास्ति ते लेभिरे पृष्ठं न वक्त्रः परयोषितः ॥

कोई याचक राजाकी स्तुति करता हुआ कहता है—हे राजा ! कवि लोगोंकी की हुई तुम्हारी यह स्तुति मिथ्या है कि तुम सर्वदा सर्व याचित पदार्थोंका दान करते हो—कभी किसी चीजके लिये किसीको "नहीं" नहीं कहते; क्योंकि आजतक तुमने

शत्रुओंको अपनी पीठ कभी नहीं दी और परस्त्रियोंको तुम्हारा वक्षस्थल कभी प्राप्त नहीं हुआ। इस श्लोकमें व्याजनिन्दा हास्योत्पादक है अतएव उसे चोज कहना ही समुचित है।

(३) परीक्ष्य सत्कुलं विद्या शीलं शौर्यं स्वरूपताम् ।
विधिर्ददाति निपुणः कन्यामिव दरिद्रताम् ॥

सर्वगुणसम्पन्न पुरुष दरिद्र होते हैं, इस बातको लक्ष्यकर कवि चोजमें विधिनिन्दा करता है। वह कहता है—"विधि अर्थात् ब्रह्मदेवके घर" "दरिद्रता" नामकी एक कन्या है। कर्त्तव्य-तत्पर पिताकी तरह वह बड़े परिश्रमसे उसके लिये वर ढूँढ़ता है। कुल, शील, विद्या, शौर्य्य, सुन्दरस्वरूप आदि गुणोंसे युक्त युवापुरुषको ही वह उसे अर्पण करता है। गुणसम्पन्न व्यक्ति और दरिद्रतासे जो सम्बन्ध है इस श्लोकमें उसका वर्णन कितना मजेदार है। अतः हमारी समझसे इसे चोज माननेमें किसी प्रकारका मतभेद नहीं हो सकता।

(४) आनन्दताण्डव पुरे द्रविड़स्य गेहे
चित्रं बलिष्ठवनिता सम।
विद्युल्लतेव परिनृत्यति तत्र देवी
धारा विलोकयति योगबलेन सिद्धः ॥ *

---

* जान पड़ता है कि सुभाषितकारको घृतधारा और विद्युल्लताका सम्बन्ध बहुत ही उपयुक्त जान पड़ा है। क्योंकि एक और श्लोकमें भी यही कल्पना इसी रीतिसे व्यक्त की गई है।

"सञ्चारिणी काञ्चन बल्लरीव
विद्युल्लता वा पतिता समस्तः ।
घृतस्यधारा पतिता न जाने
दिवं गता वाथ भुवं गता वा ॥"

अर्थात्—"द्रविड़के घरमें, जो आनन्दका निवासस्थान था, घीका बरतन अरुंधती तारेके बराबर था और उसमें पली (जिससे बरतनमेंसे घी निकाला जाता है) विद्युल्लताके समान थी। उस पलीमेंसे पत्तलपर घीकी जो धार पड़ती थी वह इतनी महीन थी कि केवल सिद्ध लोग ही उसे योगबलसे देख सकते थे।" यह कंजूसके यहाँके ब्राह्मणभोजनका वर्णन है। इसे पढ़कर शायद ही कोई ऐसा हो जिसे हँसी न आवे। लेकिन यह बात नहीं है कि विद्युल्लताकी उपमा सभी जगह हास्योत्पादक हुआ करती हो। मृच्छकटिक नाटकके नान्दीका श्लोक है—

पातु यो नीलवपुषस्य कंठः श्यामांबुदोपमः।
गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते॥

शंकरके नीलवर्ण और मेघके समान कान्तिवाले गलेमें पार्वतीका गौरवर्णका जो हाथ पड़ा हुआ है, उसे इस श्लोकमें मेघपर खेलनेवाली बिजलीकी उपमा दी गई है। परन्तु इस उपमासे हँसी नहीं आती बल्कि काव्यरम्यता की ही प्रतीति होती है।

(५) दीपो भक्ष्यते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा॥

"दीपक अन्धकारको भक्षण करता है और काजलको प्रसव करता है। ठीक ही है, प्रतिदिन जैसा अन्न खाया जाता है वैसी ही सन्तान भी उत्पन्न होती है।" इसमें दृष्टान्त चमत्कारिक तथा हास्योत्पादक है।

(६) च्युता दन्ताः सिता केशाः वाग्निरोधः पदे पदे।
पातं सञ्जिमिमं देहे तृष्णा साध्वी न मुञ्चति॥

"दाँत गिर गए, सिरमें काले बाल नामको भी नहीं रहे, बिना रुके एक भी शब्द मुहँसे नहीं निकलता। इस प्रकार शरीर सर्वथा पतनोन्मुख हुआ। तथापि आशा अकेली, साध्वी स्त्रीकी तरह इसे छोड़ना नहीं चाहती।" यहाँ आशा और साध्वी स्त्रीकी कल्पनाओंका जो सम्बन्ध दिखाया गया है वह बड़ा ही मजेदार है। अतः यह निस्संशय चोज है।

(७) अनुकुरुतः खलसुजनौ अग्रिम पाश्चात्ययोः सूच्यः।
विदधाति रन्ध्रमेको मुद्रणमस्यापरोऽपि विदधाति ॥

"खल और सज्जन क्रमशः सुईकी नोक तथा छिद्रका अनुकरण करते हैं। पहला (खल) छिद्र बनाता —दूषण प्रकट करता है दूसरा (सज्जन) उसपर परदा डालता है।" इस श्लोकमें सुईके दोनों भागोंकी उपमा समर्पक, चमत्कारिक तथा हास्योत्पत्तिकर है। अतएव यह चोज है।

(८) येनाञ्चलेन सरसीरुहलोचनायाः ।
त्रातः प्रभूतपवना हृदये प्रदीपः ॥
तेनैव सोऽस्तसमयेऽस्तमयं विनेतुः ।
क्रुद्धे विधौ भजति मित्रमपि शत्रु भावम् ॥

"चिराग जलनेके समय कमलनयनी स्त्रीके जिस अञ्चल ने वायुके प्रचण्ड झोंकेसे चिरागकी रक्षा की थी; बुझाने के समय इसीने उसका अन्त किया।" तात्पर्य यह कि दैवके कुपित होनेपर मित्र ही शत्रु हो जाता है। इसमें अंचल और दीपक का दो बार का भिन्न भिन्न प्रकारका सम्बन्ध मित्र और शत्रुके निदर्शनसे मनोरञ्जक करके दिखाया गया है।

(९) सरस हृदयासि योग्ये खिद्यति काव्ये जडोनमौर्ख्येस्वे ।
निन्दसि कंचुकमेव प्रायः शुष्कस्तनी नारी ॥

"काव्य सरस हृदय पाठक के लिये रुचिकर होता है पर फिर भी बुद्धिहीन व्यक्ति काव्यकी ही निन्दा करता है, अपनी बुद्धि की नहीं। बुढ़ापेके कारण स्तन अत्यन्त कृश हो जानेसे जिस स्त्रीकी कंचुकी ढीली होने लगती है वह भी कंचुकी हीको दोष देती है, बुढ़ापे को नहीं।" जड़बुद्धि व्यक्ति और वृद्धास्त्रीका जो साम्य इस स्थानपर दिखाया गया है वह बड़ा ही मजेदार है।

(१०) अस्य श्रीभोजराजस्य द्वयमेव सुदुर्लभम् ।
शत्रूणां शृङ्खलैलोहं ताम्रं शासनपत्रकैः ॥

"इस भोजराजके राज्यमें लोहा और ताँबा दोनों ही दुष्प्राप्यसे हो गए हैं। शत्रुओंके पाँवोंमें डालनेके लिये बेड़ियाँ बनानेमें लोहा खतम हुआ और दान समयमें दिए जानेवाले ताम्रपत्रोंके बनानेमें ताँबा।" भोजराजाकी राज्यश्री और लोहे और ताँबे का अभाव इन दोनों कल्पनाओंका सम्बन्ध इस श्लोकमें बड़ा ही चमत्कारपूर्ण तथा हास्योत्पादक हुआ है।

(४०) श्लेष—चोज कहनेका मुख्य साधन श्लेष है। श्लेषका अर्थ है शब्दका नानार्थत्व—एक ही शब्दका कई अर्थ प्रकट करना। यदि किसी विशेष शब्दके अनेक अर्थ हों और एक ही वाक्यमें उसके एकसे अधिक अर्थोंकी योजना हो तो वहाँ श्लेष होता है। प्रायः सभी भाषाओंमें थोड़े बहुत अनेकार्थ बोधक शब्द होते हैं। इसीतरह संस्कृतमें भी हैं। परन्तु अन्य भाषाओंकी अपेक्षा संस्कृतमें श्लेष-प्रयोगका अधिक प्रचार है। सभी प्रकारके काव्यों तथा नाटकोंमें श्लेषका प्रयोग पद पदपर देख

पड़ता है। इस भाषाके बहुत हालके इतिहासमें तो श्लेष-रुचि इतनी बढ़ी हुई मात्रामें देख पड़ती है कि वास्तविक उत्तम कोटिके काव्यको एक ओर रखकर अर्थात् रस और अलङ्कारपर ध्यान न देकर केवल श्लेष कहने ही को सबसे बड़ा कमाल समझा गया है। हमारे यहाँके पौराणिक और कथक्कड़ लोग एक एक श्लोक, दोहे या चौपाईके दो दो तीन तीन और चार चार तक अर्थ करते हुए देखे जाते हैं। तुलसीदासजीने जिन छन्दोंमें ईश्वर-वन्दना की है उन छन्दोंको लोग रूपकी वन्दनामें घटाते हैं। संस्कृत श्लोकों और कहीं कहीं भाषाके छन्दोंके अर्थ करते समय भी, अनेक अर्थ करनेमें एकाक्षरी कोशसे बहुत अधिक सहायता मिलती है। भला जहाँ केवल "अ" या "क" अक्षर के तीन तीन और चार चार अर्थ होते हों वहाँ श्लेषकी क्या कमी है।

(४१) संस्कृत साहित्य-शास्त्रोंने श्लेषको अलङ्कारोंमें मुख्य स्थान दिया है। 'मन्दारमन्दरचम्पू' में श्लेषकी व्याख्या इस प्रकार की गई है —

नानार्थैः शब्दैः साधर्म्य प्रतिपादनं।
वर्ण्यावर्ण्ययोर्येषां चेत् श्लेषालङ्कृतिरिष्यते॥

अर्थात्—"जहाँ वर्ण्य और अवर्ण्यका समानधर्मत्व एक ही शब्दके अनेक अर्थों द्वारा प्रकट किया जाता है वहाँ श्लेष अलंकार होता है।" श्लेष तब तक अलङ्कार नहीं हो सकता जब तक उससे दो जुदा जुदा वस्तुओंका सम्बन्ध न दिखाया गया हो। क्योंकि एक ही शब्दके अनेक अर्थोंका अलग २ वाक्योंमें उपयोग होने पर भी यदि उन वाक्यार्थोंमें परस्पर सम्बन्ध अथवा मेल न हुआ तो उस शब्दकी अनेकार्थतासे

कोई चमत्कार नहीं उत्पन्न हो सकता। जैसे 'कच' शब्दके दो अर्थ होते हैं ; एक 'बृहस्पतिका पुत्र' और दूसरा 'केश'। अब यदि इस शब्दका दो जुदा जुदा वाक्योंमें जुदा जुदा अर्थमें उपयोग किया जाय—उदाहरणार्थ, "कच जब स्वर्गलोकसे रवाना हुआ तब पहले गंगातटपर आया और स्नानोपरान्त अपने लम्बे कचोंमें गाँठ देकर सन्ध्या करने बैठा"— तब इससे कुछ भी अर्थ-चमत्कार नहीं उत्पन्न होता। इसी शब्द को यदि किसी ऐसे वाक्यमें योजना की जाय जैसे कि "कचके कच बड़े लम्बे हैं" तो दोनों ही अर्थोंमें शब्दोंके बहुत अधिक पास पास रहने तथा वाक्यके केवल निर्दोष ही नहीं बल्कि पुनरुक्तिकी भी सम्भावना न होनेके कारण इस योजनामें थोड़ा बहुत चमत्कार मालूम होगा। हाँ, यह चमत्कार विशेष रमणीय न होगा। पर इसी बृहस्पतिपुत्र कच और कच (केश) का यदि परस्पर कोई सम्बन्ध दिखलाते हुए समानधर्मत्व दिखाया जाय तो इससे सच्चे तथा रमणीय चमत्कार की उत्पत्ति होगी। हिन्दीके अलङ्कार-सम्बन्धी ग्रन्थोंमें श्लेषके बहुतसे उदाहरण मिल सकते हैं। नीचे लिखे उदाहरण विशेष चमत्कारपूर्ण हैं—

(क) कीकर पाकर तार, जामन फलसा आमला।
सेव कदम कचनार, पीपल रत्ती तून तज॥

(ख) कहनावत में यह सुनी, पोषत तनको नेह।
नेह लगाए अब लगी, सूखन लगरी देह॥

पहले दोहेमें एक ओर तो सब वृक्षोंके नाम आए हैं और दूसरी ओर वह भक्ति-पक्षमें घटता है। दूसरे दोहेमें नेह शब्दमें श्लेष है।

(४२) काव्यप्रकाशकार मम्मटकी श्लेष-व्याख्या नीचे लिखे अनुसार है—

वाच्यभेदेनभिन्ना मधुगपद्भाषणास्पृशः ।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा ॥

अर्थात्—"वाच्यार्थ भेदसे भिन्न एक ही समयमें होनेवाले उच्चारणके कारण जहाँ शब्द अपनी भिन्नरूपताको छिपाकर एकरूपतामात्रको प्रकट करते हैं वहाँ श्लेष नामका अलङ्कार होता है। यह अलङ्कार वर्ण, पद, लिङ्ग, वचन, विभक्ति, अव्यय, प्रकृति तथा भाषा आदिके आधार से आठ प्रकारका होता है।" प्रकरण तथा अनुसन्धान एक ही होनेसे नवें प्रकारका श्लेष होता है। यहाँ सबके उदाहरण देनेका प्रयोजन नहीं। अन्य रीतिसे विचार करनेसे श्लेषके केवल दो ही प्रकार होते हैं, एक सभंग और दूसरा अभंग। अभंग श्लेषका उदाहरण ऊपरका दूसरा दोहा—

कहनावत में यह सुनी , पोषत तनको नेह ।
नेह लगाए अब लगी , सूखन सगरी देह ॥

अथवा—

जो चाहो न चटक घटै , मैलो होय न मित्त ।
रज राजस न छुवाइए , नेह चीकने चित्त ॥

है। पहले दोहेमें केवल "नेह" तथा दूसरेमें "रज" और "नेह" दोनों शब्दोंमें श्लेष है और ये सब शब्द बिलकुल स्वतंत्र और दूसरे शब्दोंसे अलग हैं। उन्हें किसी दूसरे शब्दको तोड़कर अलग नहीं करना पड़ता। सभंग श्लेषका उदाहरण ऊपरका पहला दोहा

कीकर पाकर तार जामन फलसा आमला ।
सेव कदम कचनार पीपल रत्ती तून तज ॥

है। इसमें पेड़ोंके जो नाम हैं वे तो दोहेको इसी रूपमें रखने से निकलते हैं; परन्तु भक्ति-पक्षवाला अर्थ निकालनेके लिये उसमें के शब्दों को कहीं तोड़ना और कहीं मिलाना पड़ता है जिसके कारण उसकी गणना सभंग श्लेषमें होती है—

की (ि) करपा करतार, जा मन फल सा आ (ि) मला।
सेव कदम कच नार, पी पल रत्ती तू न तज ॥

(४३) काव्यप्रकाशकार तथा और कितने ही दूसरे साहित्य-ग्रन्थकर्त्ताओंमें श्लेषके विषयमें मतभेद है। काव्यप्रकाशकारके मतसे श्लेष स्वतंत्र शब्दालंकार है और स्वतंत्र रीतिसे अर्थालंकार भी है। अन्य ग्रन्थकारोंके मतसे यह केवल अर्थालंकार ही है, शब्दालंकार नहीं हो सकता। उनका कहना है, कि जहाँ श्लिष्ट पदोंका प्रयोग किया जाता है वहाँ प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत पदार्थोंके सम्बन्धका कुछ न कुछ अवश्य निदर्शन होता है, अतः श्लेषको शब्दालंकार नहीं कहा जा सकता। परन्तु काव्यप्रकाशकारका कथन है कि जहाँ श्लिष्टार्थ श्लिष्ट शब्द हीमें हो—अर्थात् जहाँ श्लिष्ट पदके स्थानपर उसीके पर्य्यायवाची अन्य शब्दकी योजना करनेसे श्लिष्टार्थ न निकलता हो—वहाँ श्लेषकी गिनती शब्दालंकार हीमें होनी चाहिए। इसके विरुद्ध जहाँ श्लेष अर्थालंकार होता है वहाँ श्लिष्ट शब्दका विशेष महत्त्व नहीं होता अर्थात् वहाँ उसी अर्थका और शब्द रख देनेसे भी अलंकारकी सिद्धिमें बाधा नहीं पड़ती। इसका उदाहरण निम्नलिखित श्लोक है—

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायाति अधोनतिम्।
अहो सुसदृशी वृत्तिः तुलाकोटे खलस्य च ॥

अर्थ—आहा! देखिये, खल-दुर्जन और तराजूके काँटेके

स्वभाव कैसे एक दूसरे से बिलकुल मिलते हुए हैं! दोनों ही थोड़े कारणसे उन्नत होते और थोड़ेसे ही कारणसे अधोगत होते—नीचे बैठ जाते हैं। तराजूके एक पलड़ेके वजनमें दूसरे से जरा भी कमीबेशी होते ही जिस तरह वह उठता और बैठ जाता है उसी तरह दुर्जन भी थोड़े ही लाभसे बढ़ते और थोड़ी ही हानिसे घट जाते हैं। यहाँ 'स्तोक' की जगह अल्प या और कोई शब्द रख देनेसे भी वाक्य की द्व्यार्थकता अर्थात् दोनों वस्तुओंकी ओर लगनेवाला अर्थ ज्योंका त्यों बना रहता है। यहाँ विशेष महत्त्व अर्थ ही का है; शब्दका नहीं। अतः यह श्लेष अर्थालंकार है। लेकिन यदि "कहनावत में यह सुनी" वाले दोहेमें "नेह" के स्थानपर कोई और शब्द रख दिया जाय तो श्लेष उत्पन्न न होगा। अतः इस विषयमें काव्यप्रकाशकारका कथन औरोंसे अधिक युक्तिसंगत है, अतः श्लेषके शब्दालंकार और अर्थालंकार दो पृथक् पृथक् भेद सचमुच मानने पड़ते हैं। परन्तु खाली शब्द-श्लेषमें विशेष रमणीयता नहीं होती। इसलिये उसकी गणना चोजमें नहीं हो सकती। परन्तु श्लेष जहाँ अर्थालंकारवाला होता है वहाँ उसकी गणना चोजमें हो सकती है। इन दोनों प्रकारोंके श्लेष हिन्दीके अलंकारग्रन्थोंमें मिल सकते हैं।

(४४) अँगरेजी साहित्य-शास्त्रकारोंके मतसे भी शब्द मात्रका चोज उत्तम नहीं माना जाता। और ऐसे चोज लिखना ग्राम्यताका सूचक समझा जाता है। एडिसनने लिखा है कि शब्दोंपर चोज कहनेकी बुद्धिका बीज प्रायः सभी मनुष्योंके मस्तिष्कमें विद्यमान होता है। विचार, तर्क, परिचय और विवेक इस बीजको विशेष अंकुरित नहीं होने देते। फिर भी चोज कहनेका चाव मनुष्य मात्रमें इतना प्रबल है कि साधारणतः अच्छी बुद्धि-

वाला मनुष्य भी, यदि उसके मनपर ललितकलाओंके नियमोंका उत्तम संस्कार न हुआ तो, वैसे चोज कहनेसे बाज नहीं आता। मनमें जबतक ऊँची कल्पनाएँ नहीं उत्पन्न होतीं तबतक शाब्दिक चोज कहनेकी इच्छा बनी ही रहती है। परन्तु ऊँची कल्पनाओंके मनमें रहते हुए भी अनेक अवसरोंपर शब्दश्लेष कहनेकी इच्छा अनिवार्य्य होती है। यही कारण है जो अरिस्टाटल (अरस्तू), सिसरो, शेक्सपियर आदिके ग्रन्थोंमें भी शब्दश्लेषका अभाव नहीं है।

(The seeds of punning are in the mind of all men and though they may be subdued by reason, reflection and good sense they will be very apt to shoot up in the greatest genius that is not broken and cultivated by the rules of art. Imitation is natural to us and when it does not raise the mind to poetry, painting, music and other noble arts, it often breaks out in puns and quibles—Addison)

शेक्सपियरके विषयमें तो कहा जा सकता है कि उसे इस बातका विचार ही नहीं था कि शब्दगत चोज कहाँ कहने चाहिए और कहाँ नहीं, क्योंकि यह केवल उसके हास्यरसप्रधान नाटकों हीमें नहीं पाया जाता बल्कि करुणरसप्रधान और शोकपर्यवसायी नाटकोंमें भी और मुख्य पात्रोंके मुखसे ठीक करुण कथवा वीररसपूर्ण भाषणोंमें कहलाया गया है।

शेक्सपियरके ग्रन्थोंमें मिलनेवाले शब्दगत चोजके उदाहरणोंमें कुछ चुने हुए उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

Proteus—It were best 'pound' you.

Speed—Nay sir, less than a *pound* shall serve me for carrying your letter.

Proteus—You mistake. I mean the *pound*, a pinfold.

Speed—From a pound to a pin? Fold it over and over. It is threefold too little for carrying a letter to your lover.

(Two gentelmen of Verona)

Juba.—And is that paper nothing?

Lacetta.—Nothing concerning me.

Ju.—Then let it *lie* for those that it concerns.

Lu.—Madam, it will not *lie* where it concerns. Unless it has a false enterpreter.

(Ibid)

Fal.—My honest lads, I will tell you what I am *about*.

Pist.—Two yards and more.

Fal.—Indeed. I am in the *waist* two yards about; but I am now about no *waste*.

(The Merry Wives of Windsor.)

Oli.—What kind of man is he?

Mal.—Why, of man-kind.

Oli.—What manner of man?

Mal.—Of very ill manner.

(Twelfth-Night.)

Vio.—Art thou a *Churchman?*

Clo.—No such *matter*, Sir, I do *live by the Church*; for I do live at my house, and my house doth stand *by the Church*.

(Twelfth night.)

Pedro.—Freely the lady *fathers* herself.

(*Much Ado about Nothing.*)

Lys.—Then by your side no bed-room me deny.

For, *lying* so, Hermia, I do not lie.

(*A Midsummer Night's Dream.*)

Cost.—Which is the *head* lady?

Prin.—Thou shalt know her, fellow, by the rest that have no *head*.

(*Love's Labour's Lost.*)

Gra.—Not on thy *sole*, but on thy *soul* harsh Jew.

Anto.—If the Jew do but cut deep enough, will pay it instantly *with all my hearts*.

(The Merchant of Venice.)

Orl.—What, of my suit?

Ros.—Not out of your apparel and yet out of your suit.

(As You Like It.)

Hor.—Madam it is now in time.

Luc.—All but the *base*.

Hor.—The *base* is right, it is the base knave that *jars*.

(The Taming of the Shrew.)

Fal.—Yea, and so used it that were it not *here apparent* that thou art *heir-apparent.*

(King Henry IV Pt. 1.)

2nd Citi—A trade, Sir, that I hope I may use with a safe conscience, which is indeed, Sir, a mender of bad soles (*soules.*)

(*Julias Cæsar.*)

Cleo.—Indeed ?

Mar.—Not in deed, Madam,

(*Antony and Cleopatra.*)

(४५) शेक्सपियरके ग्रन्थोंमें यद्यपि बहुतसे शब्दश्लेष मिलते हैं तो भी कुल मिलाकर संस्कृतग्रन्थोंकी अपेक्षा अंगरेजी ग्रन्थोंमें वे बहुत ही कम हैं। Thomas Hood सरीखे शब्द-श्लेषशूर कवि वहाँ भी हैं ; पर बहुत कम। (They went and *told* the Sexton and the Sexton *tolled* the bell—Hood) उत्तम कोटिके अंगरेजी साहित्य-ग्रन्थोंमें तो शब्दश्लेषका प्रायः अभाव ही कहा जा सकता है। उदाहरणके लिये टेनिसनके काव्य भर में एक भी शुद्ध शब्दश्लेषका उदाहरण मिलेगा या नहीं इसमें सन्देह ही है। मिल्टनके ग्रन्थोंमें कहीं कहींपर एक दो उदाहरण मिलते हैं। (At one light bound high overleaped all bound—Paradise Lost, Book VI) एडमंड बर्कके एक ही शब्दश्लेष लिखनेका पता चलता है। परन्तु वह बड़ा ही समर्पक और गम्भीर विचार उत्पन्न करनेवाला है। वह यों है—What is (M) a jest (Y) when deprived of its external, but a jest ? अंगरेजी जाननेवालोंको इस शब्दश्लेषकी खूबी स्पष्ट करके बताने

की आवश्यकता नहीं। अंगरेजी समाजमें आज भी शब्दश्लेषका प्रचार है, यह बात Tit-Bits अथवा London Punch and Charivari पत्रोंमें निकलनेवाले चोजोंसे स्पष्ट सिद्ध होती है। अंगरेजीमें शब्दश्लेषका विशेष प्रचार प्राचीन इटालियन भाषा के सम्पर्कसे शुरू हुआ और शेक्सपियरके कुछ ही पहलेसे यह सम्पर्क आरम्भ होनेके कारण उसके तथा उसके समकालीन अन्य ग्रन्थकारोंके ग्रन्थोंमें श्लेषकी भरमार देख पड़ती है। परन्तु दिनोंदिन इसका चलन कम होता गया। कई विशेष प्रकारके श्लेष बड़े ही मनोरंजक होते हैं और प्रायः उनमें समर्थकता भी होती है। इसकारण शब्दश्लेषका साम्राज्य अंगरेजी ही परसे नहीं, अन्यान्य भाषाओंपरसे भी एकदम नष्ट होना प्रायः असम्भव ही है। परन्तु उत्तम रुचिसे तत्काल ही अच्छे और बुरे श्लेषकी पहचान हो जाती है, इसकारण उसे कहीं अनुचित महत्त्व नहीं मिल सकता। ग्रेहम नामके एक अंगरेज ग्रन्थकारने "A Book about words" नामकी अपनी पुस्तकमें शब्दश्लेषके विषयमें जो विचारपूर्ण मत प्रकट किया है वह हर एक भाषाके शब्दश्लेषपर चरितार्थ हो सकता है। वह कहता है:—Language has been like most other things subject to many and various abuses. Anagrams, choronograms, acrostics. etc., have each and all "fretted their hour upon the stage and now are heard no more". But the pun seems likely to maintain its place both in conversation and in written composition. Let us not be misunderstood. It is not the practice, but the abuse of it that is to be condemned. We are stongly of opinion that

there can be no greater pest to society than inveterate and professional punster, a man who sets traps for you, who lies in wait for every phrase you utter to twist and turn it into a meaning of his own and who is continually stopping the natural flow of discourse and bringing it to some lame and impotent conclusion. But, as we have endeavoured to show, the pun when telling and well applied is as legitimate a form of wit as any other and quite as conducive to good feeling and good fellowship."

(४६) शब्दश्लेषका प्रस्तुत विवेचन समाप्त करने के पहले हम अपने पाठकोंसे यह अनुरोध किए बिना नहीं रह सकते कि प्रसिद्ध अमेरिकन विनोद-लेखक Oliver W. Holmesने शब्द श्लेषका प्रयोग करनेवाले लोगोंके विषयमें जो लेख लिखा है वे उसे अवश्य पढ़ें। यह लेख Twain'sLibrary of Humour पुस्तकके ४१७ वें पृष्ठमें उद्धृत किया गया है। इसमें कल्पना की गई है कि किसी दयाशील सज्जनने उन लोगोंके लिये एक चिकित्सालय स्थापित किया है जिनके दिमाग शब्दश्लेष कहते २ खराब हो गए हैं। इस चिकित्सालयके नियम और उसमें रखे जानेवाले लोगोंकी दिनचर्या आदिका बड़ा ही विनोदपूर्ण वर्णन किया गया है। नीचे इस लेखके आरम्भकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं; उनसे सम्पूर्ण लेखके विषयमें अनुमान करनेमें सहायता मिलेगी। यह कहना अनावश्यक है कि इस लेखका मुख्य हेतु शब्दश्लेषका प्रयोग करनेवालोंकी फजीहत करना है—

The great success of the asylum for idiots and feeble-minded youth, several of the scholars from which have reached considerable distinction, one of them being connected with a leading daily paper in this city, and others having served in the State and National Legislatures, was the motive which led to the foundation of this excellent charity. Our distinguished townsman, Noah Dow Esquire, as is well known, bequeathed a large portion of his fortune to this establishment, being thereto moved as his will expressed it "by the desire of N. Dowing some public institution for the benefit of Mankind." Being consulted as to the rules of the Institution and the selection of a Superintendent, he replied that all Boards must construct their own platforms of operation. Let them select—*any how*, and he should be pleased. N. E. Howe Esq. was chosen in compliance with this delicate suggestion."

(४७) विनोद-वचन—विनोदवचन कल्पनाशक्ति द्वारा रचित उस शब्दप्रबन्धको कहते हैं जिसके योगसे विचारोंको असम्बद्ध, विकृत अथवा अद्भुत स्वरूप प्राप्त होता है तथा कुल मिलाकर जिसका परिणाम हास्योत्पादक होता है। चोज और विनोद का प्रधान अन्तर पहले चोज का विवेचन करते हुए

बतलाया जा चुका है। चोजका सम्बन्ध बुद्धिशक्तिसे है और विनोदका मनोभावोंसे। जबतक बुद्धि प्रगल्भ और संस्कृत न हो, चोज सफलतापूर्वक नहीं कहा जा सकता। विनोदवचन अशिक्षित मनुष्य भी कह सकता है। चोजमें असम्बन्धतादर्शन ही नहीं होता बल्कि उस असम्बद्धताका स्वरूप नई कल्पनाकी रचना द्वारा व्यक्त किया जाता है। विनोदमें ऐसी नवीन कल्पना करने की आवश्यकता नहीं होती। प्रकृत असम्बद्ध स्थितिका ही यथार्थ पर और मनुष्योंका ध्यान आकर्षित करने योग्य वर्णन कर देने हीसे उसकी प्रयोजनपूर्त्ति हो जाती है। चोज रचनेवालों की दृष्टि श्रोताओंकी ओर जितनी होती है, विनोदवाक्य रचनेवालेकी उससे अधिक होती है। यदि कल्पना करलें कि चोज कहनेवाला श्रोताको असम्बद्धता रूपी गहरे पानी में ढकेल कर स्वयं कहीं दूरसे इस तमाशेको देखा करता है तो विनोदरचयिता के लिये यह कल्पना करना ठीक होगा कि वह केवल अपने श्रोताहीको गहरे पानी में नहीं ढकेलता, बल्कि स्वयं भी उसके साथ उसमें कूद पड़ता है और एक दूसरेको डुबकियाँ दे दे कर दोनों ही निमज्जनसुख अनुभव करते हैं। विनोदमें हास्य प्रायः स्फुट होता है, चोजमें वह उतना स्फुट नहीं होता। विनोद के प्रकार अनन्त हैं। चोजके प्रकारोंकी संख्या प्रायःनिश्चित है। विनोद एक उत्तम बहुरूपिया है जिसके स्वाँग बननेके प्रकार और विषयोंकी व्यापकता उतनी ही है जितनी कि मानव स्वभाव और लोकव्यवहार की। वह कभी तो किसी कठोरचित्त न्यायाधीशके समान गम्भीर स्वभाव धारण कर आपको दण्ड देने का रूपक करेगा, और कभी किसी चुलबुले बच्चेकी तरह आपकी मूँछें खींचकर आपको हंसा देगा। उसका पहनावा कभी तो बिलकुल हालके फैशन की नकल होगा और कभी हजारों वर्षका इतना पुराना होगा जिसे पहचानना आपके लिये

असम्भव होगा। परन्तु उसका वेग, तथा स्वाँग चाहे जैसा हो अन्तमें वह आपको खिलखिला कर हँसाए बिना न रहेगा। मैकालेने अपने Addison विषयक निबन्ध में विनोदका वर्णन नीचे लिखे अनुसार किया है—

What a wonderfull thing is humour! How supple aud delicate it is! How swift to seize every opportunity and yet how gentle! How true to facts of life and yet how merciful in what it conceals! How bold in its delineation of character, yet how tender to preserve our respect. It discovers and binds together things which would otherwise appear unrelated and disunited. It detects similarity where there seems only incongruity. It finds hidden analogies in the midst of difference. But it can also untwist and set in opposition to each other things which at first sight appear almost identical. It is as quick as any metaphysician in detecting distinctions; and discrepancies disclose themselves merely by the force of its presence. Humour can turn the most cautious self-contained closed-up person inside out in the twinkling of an eye. It seizes e. g., upon a stone-headed bumpkin and under its magic touch the poor lout opens to us his heart and tells us the simple truth about himself and all connected with him in his own quaint dialect. Yet to

a cross-examining lawyer he would be as irresponsive as the box in which he was standing.

(४८) चोज और विनोद का अन्तर बताते हुए कहा जा चुका है कि विनोदका सम्बन्ध मनोभावोंसे ही अधिक होता है। इस कथनका स्पष्टीकरण कर देनेसे विनोदके स्वरूपका स्पष्टीकरण आपसे आप हो जायगा। धात्वर्थके विचारसे विनोद शब्दका अर्थ "निकाल देनेवाला" या "भगा देनेवाला" होता है। अर्थात् जान पड़ता है कि शब्द बनानेवालेने विनोद पदार्थके "चिन्ताको भगाकर आनन्दमय भावकी जाग्रति करने" के गुण को ध्यान में रखकर ही इस शब्दकी रचना की है। अँगरेजीमें जो शब्द विनोदका पर्य्याय है उसके भी धात्वर्थका सम्बन्ध मनोभावों हीसे है। Humour का अर्थ है शरीरान्तर्गत वह द्रव पदार्थ जिससे मनुष्यका स्वभाव बनता है। (The ancient physicians believed that there were four humours—the blood, phlegm, yellow bile or choler, and black bile or melancholy —on the relative proportion of which the temperanent and health depended.—Webster.) इससे सिद्ध है कि संस्कृत विनोद अथवा अँगरेजी Humour का बुद्धिकी अपेक्षा स्वभाव अर्थात् मनोभावोंसे ही निकट सम्बन्ध है। यदि विनोदका मनोभावोंसे सम्बन्ध है तो वह एक मनोभाव से बनता है अथवा अनेकसे? और वह एक अथवा अनेक मनोभाव हैं कौनसे? इसका उत्तर केवल तर्कसे नहीं दिया जा सकता; विनोदके परिणाम स्वरूप हास्यके स्वरूप तथा विनोदवचन-प्रयोगके प्रत्यक्ष अनुभवसे इसका उत्तर देना

चाहिए। एक बात पहले ही बतादेना उचित है। वह यह कि विनोदसे आनेवाली हँसी और छोटे बच्चे अथवा असभ्य जंगली अथवा सभ्य समाजके भी अज्ञ लोगोंकी हँसी भिन्न भिन्न वस्तुएँ हैं। पहली हँसीमें मनःसंस्कृतिके प्रभावकी झलक रहती है; दूसरीमें वह नहीं पाई जाती। यदि हास्यध्वनिको एक प्रकारकी गायनध्वनि मानलें तो विनोदी हास्यध्वनिकी गति "कोमल" सिद्ध होगी, तीव्र नहीं; अर्थात् उक्त हास्य जिन मनोभावोंका परिणाम है उनमें कोमलता होती है, तीव्रता नहीं। यह बात समझ लेनेपर यह भी उसी समय समझमें आ जायगा कि विनोदात्मक मनोभावोंमें नवरसोंमें से किन रसोंके स्थायी भावों का समावेश हो सकेगा और किनके स्थायी भावोंका न हो सकेगा। उदाहरणार्थ क्रोधरूपी मनोविकारके वास्तविक प्रादुर्भावके समय विनोदकी स्फूर्त्ति नहीं होगी। क्रोधी मनुष्य कभी कभी हँसता है सही पर उस हास्यकी भयंकरता तुरन्त ही बता देती है कि वह विनोदजन्य नहीं बल्कि क्रोधजन्य है। इसीतरह मत्सर, ईर्ष्या, लोभ, दर्प इत्यादिमेंसे किसी एक विकारसे ग्रस्त मनुष्यसे भी सच्चा विनोद होना असम्भव है और उसके हास्यके मूलमें रहनेवाले तीव्र मनोभावका पता सुननेवालोंको उसी क्षण लग जाता है। विनोदसे उत्पन्न हास्य सुनते ही सुननेवालेको इस बातका विश्वास हो जाता है कि हँसनेवालेके मनमें शान्ति, हँसोड़पन, आनन्द, सहिष्णुता, विचारशीलता, सात्विकता, उदारभाव-जाग्रति, ममता आदि सब भाव अथवा इनमेंसे कुछ भावोंका विशेष रूपसे निवास है। विनोदके अनेक विभावोंकी जातियोंपर ध्यान देनेसे ज्ञात होगा कि सच्चे विनोदशील मनुष्यमें उपर्युक्त गुण अवश्य होते हैं। हास्यकी उत्क्रान्ति के क्रमका विचार करते हुए दार्शनिकोंने विनोदी हास्यको हास्योत्क्रान्ति की सबसे पीछेकी अवस्था सिद्ध किया है। और

उसका स्वरूप इतना सूक्ष्म न होता तो उसमें उपर्युक्त इतने गुणोंके संयुक्त परिणामके निदर्शनकी शक्ति अथवा पात्रता ही कैसे आती? इन इतने भिन्न भिन्न मनोविकारोंको विनोदमें परिमित होनेके लिये जो बुद्धि अथवा कल्पना शक्तिकी सहायता होती है वह इसीलिये कि जिसमें बड़े परिणामवाले अथवा अनेक जातियोंके पदार्थोंका एक क्षणमें सन्निकर्ष हो जाय और उससे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान अथवा अनुभव साररूपसे ग्रहण किया जा सके। एक आधुनिक अनुभवका उदाहरण लीजिए। फ़ोटोग्राफ़ बनानेके यंत्र (कैमरे) के अग्रभागमें एक छोटेसे काँचके द्वारा एक क्षणमें बड़े २ और विस्तीर्ण दृश्योंका प्रतिबिम्ब भीतर-वाले काँचपर पड़ता है। परन्तु इस छायारूपी प्रतिबिम्बके विकासके लिये—अर्थात् छाया और प्रकाशके मिश्रणसे यथार्थ रूपदर्शन होने के लिये—रासायनिक पदार्थोंके उपयोगकी आवश्यकता होती है। इसीतरह एकबार मनको प्रत्येक परिस्थितिका ज्ञान हो जानेपर फिर उल्लिखित विविध मनोभावरूपी मसालोंकी सहायतासे विनोदशक्तिसम्पन्न मनुष्य उस ज्ञानको हास्योत्पादक करके दिखा सकता है।

(४६) विनोदी मनुष्यकी परिस्थितिके निरीक्षणकी एक ही प्रणाली नहीं होती। इससे एकही वस्तुके विविध अंग उसको दिखाई पड़ते हैं और इस प्रकार उसी वस्तुके भिन्न भिन्न पर सच्चे स्वरूप उसको प्रत्यक्ष होते हैं। यह बात नहीं है कि वस्तु का भिन्न भिन्न दृष्टियोंसे निरीक्षण करते समय वह अपनी तर्कशक्तिको एकबारगी जवाब दे देता है। उसके उद्देश्यमें निश्चय, गम्भीरता अथवा सत्यप्रियताका भी अभाव नहीं होता। होता इतना ही है कि उद्देश्य वही होने हुए भी उसके विचारों पर एक तरहके हँसोड़पनकी परछाईं या झलक रहती है।

जिस बातको देखकर और मनुष्योंके हृदयमें क्रोध, दुःख अथवा ईर्ष्या आदि भावोंका उदय होता है उसीको जब कोई विनोदी स्वभावका मनुष्य देखता है तब दो चार सामान्य वाक्य कहकर ही उसे टाल देता है। वह कहता है—"अजी जाने दो, इसमें है ही क्या? यह तो होना ही चाहिए था, ऐसा न होता तभी हमें आश्चर्य्य होता। हमको इससे क्या हानि-लाभ होगा? इसके लिये हम अपनी मनःसमताका सुख त्यागकर व्यर्थ तीव्र मनोभावों के अधीन क्यों हों? और इसकी असम्बद्धता देखनेसे जो मज़ा मिलता है उसे क्यों छोड़ें? अथवा अनुभूत विषयपर सकरुण होकर उससे सहानुभूति रखनेसे जो एक प्रकारकी कोमल मनोवृत्ति जाग्रत होती है उसके अनुभवका आनन्द क्यों न उठावें?" तीव्र और विनोदी मनोवृत्तिके मनुष्यमें जो अन्तर होता है वह यही है। परिस्थिति दोनोंके लिये एकही होती है। उससे होनेवाले हानि-लाभ भी दोनोंके लिये बराबर ही हैं। फिर भी किसी प्रकारके व्यावहारिक लाभकी आशा न होते हुए भी एक मनुष्य अपने मनोविकारों की स्निग्धताके कारण उक्त दुःखसे बचा रहता है; और इतना होनेपर भी विनोदी मनुष्यके उद्देश्यमें, दृढ़ निश्चय अथवा गम्भीरतामें ज़रा भी कमी नहीं होने पाती। जो परिस्थिति उसे एक क्षण भी विनोद-सुखका अनुभव करा देती है उसका वह एक प्रकारसे कृतज्ञ ही होता है।

(५०) हास्यास्पद और हास्योत्पादक दो स्थितियोंके नाम हैं। दोनोंमें भिन्नता है। हास्यास्पद स्थितिमें कोई एक दोष अथवा त्रुटि होती है। परन्तु हास्योत्पादक स्थितिमें ऐसी कोई बात नहीं होती। एक ही बातके हास्यास्पद और हास्योत्पादक दो भाग हो सकते हैं। तीव्र मनोवृत्तिवाला मनुष्य जब कभी

हँसता है तब प्रायः उसकी निगाह परिस्थितिके हास्यास्पद भागकी ओर ही होती है और इसलिये उसकी मनोवृत्ति शुद्ध तथा सात्त्विक नहीं होती। परन्तु विनोदी मनुष्यकी दृष्टि हँसते समय परिस्थितिके हास्योत्पादक भाग ही पर होती है। अतएव उससे उसे दुःख नहीं बल्कि एक तरहका सुख ही होता है और उसकी वृत्तिपर प्रसंगानुसार पूर्वोल्लिखित कोमल मनोविकारोंमें से एक अथवा अनेकका परिणाम दिखाई पड़ता है। किसी छोटे लड़केसे कोई अनुचित बात हो जानेपर तीव्र मनोवृत्ति-वाली माता उसको तमाचा लगा देगी। परन्तु उसीकी जगह यदि कोई विनोदी स्वभाववाली माँ होगी तो वह स्वयं भी हँसेगी और लड़केको हँसाकर उसके कार्यकी असम्बद्धता उसपर प्रकट करा देगी। ऊपर जो अनेक मनोभाव विनोदी मनोवृत्तिके सहायभूत कहे गए हैं उनमेंसे एकसे अधिकके उपस्थित रहते हुए भी उनका परिणाम एक ही समयमें होनेके कारण होता है। अर्थात् जिस प्रकार स्वर-सप्तकके वादी और संवादी स्वर एक ही साथ निकलकर भी हमें एकही संयुक्त स्वरकी प्रतीति कराते हैं, उसी प्रकार विनोद उपर्युल्लिखित विविध मनोभावोंके जाग्रत रहते हुए भी हमें उनका एकही परिणाम—विनोदीहास्य—दिखाई पड़ता है। इसतरहकी इकहरी मनोवृत्ति जैसे केवल "बुरा लगना" अथवा "मजा मिलना" अथवा "खेद होना" आदि घोड़ों, बच्चों और असभ्य मनुष्योंमें, अर्थात् उनमें जिनके अन्तःकरणका विकास नहीं हुआ है, देखी जाती है। परन्तु विनोद सरीखी मनोवृत्ति केवल उन्हींमें देखी जाती है जिनका हृदय अच्छीतरह विकसित हो चुका होता है। फिर चाहे यह विकास शिक्षाके कारण हो अथवा जन्मागत गुणोंके कारण। इस मिश्रणकी विशेषता यह है कि कोई मनोविकार किसी दूसरे मनोविकारसे विसंवादी नहीं होता और प्रत्येकके थोड़े थोड़े अंशोंका उसमें समावेश होता है। इन विशेष-

ताओंको समझ लेनेपर यह समझना बहुत सहज होगा कि अपनी दी हुई बलि होमकुण्डमें जलते देख खिलखिलाकर हँसनेवाले जंगलियों तथा अपने अश्लील गन्दे शब्दोंसे बड़े-बूढ़ों को हँसा देनेवाले होलीके स्वाँगके साथी लड़कोंकी मनोवृत्ति अथवा हास्यको विनोदी क्यों न कहना चाहिए। और औषधि न खानेवाले जिही रोगीको लज्जित करके उसे खानेको राजी करनेवाली अर्थचमत्कारपूर्ण और हास्यकारक बातें कहनेवाले वैद्यकी मनोवृत्ति अथवा हास्यको वही विशेषण क्यों औचित्य-पूर्वक दिया जा सकता है।

(५१) विनोदकी सब विशेषताओंमेंसे एक विशेषता विशेष रूपसे जानने योग्य है। विनोदी मनुष्य सच्चा परोपकारी होता है और उसकी परोपकारितामें विशेषता यह होती है कि वह स्वयं दुःखित, क्लेशित अथवा मनसे उदास होनेपर भी अपने दुःखको प्रकट करने नहीं बैठता बल्कि अपनी विनोदशक्तिसे दूसरोंका उपकार करता है। उसके निजके उद्देश्य वा आवेश वा गम्भीरता दूसरोंके प्रति किए जानेवाले उपकारमें बाधा नहीं पहुँचाती। संसारमें जितने विनोदी लेखक अथवा व्याख्याता हो गए हैं सबने स्वयं दृढ़चित्त, विचारशील, गम्भीरवृत्तिके तथा आवेशयुक्त होते हुए भी संसारकी असम्बद्ध-बेमेल बातोंके हास्योत्पादक अंगों ही की ओर दृष्टि रखकर उनके विषयमें अपनी लेखनी तथा वाणीसे सहानुभूति ही उत्पन्न की है। फ्रान्सके प्रख्यात विनोदी लेखक रैबेल, डान क्विग्जोट नामक अद्भुत हास्योत्पादक उपन्यासके रचयिता सर्वेंटीस, प्रसिद्ध प्रहसनकार मोलियर और इसीतरह शैरिडन, गोल्डस्मिथ आदि अँगरेज विनोदी ग्रन्थकर्त्ता उपर्युक्त सत्यसिद्धान्तके उदाहरण हैं। स्व० विष्णुशास्त्री चिपलूनकरने अपनी मराठी पुस्तक विनोद

महदाख्यायिकामें नीचे लिखी आख्यायिका दी है। उससे भी उक्त सिद्धान्त का समर्थन होता है—"जो मनुष्य सदा जिन्दादिल देख पड़ता है, जो सर्वत्र सबको हँसाता रहता है, जिसकी मुद्रा सदा उल्लासयुक्त रहती है, कभी कभी उसकी वास्तविक स्थिति क्या होती है, निम्नलिखित कहानी उसका एक समर्थक उदाहरण है—कार्लिनी नामका एक बड़ा प्रसिद्ध नक्काल या भाँड़ था। वह कुछ दिनोंतक पेरिसमें आकर रहा। वहाँ उसकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। एक दिन पेरिसके एक प्रसिद्ध वैद्यके यहाँ एक मनुष्य आया। उसने कहा, वैद्यजी! मेरा दिल बार बार उदास हो जाया करता है। मुझे कोई बात अच्छी नहीं लगती इससे मुझे बहुत अधिक कष्ट हो रहा है। दया कर कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे मेरी उदासी दूर हो और मेरा मन उल्लासयुक्त हो।" "वैद्यने कहा, भाई तुम्हारे इस विलक्षण रोग की तो मुझे एक ही दवा मालूम है। तुम अकेले रहनेकी आदत छोड़कर चार तबियतदार दोस्तोंकी मण्डलीमें अपना कुछ समय बिताया करो और खासकर आजकल यहाँ जो कार्लेनी नामका प्रसिद्ध नट आया हुआ है उसकी नकलें देखा करो। रोगीने जवाब में कहा—"महाराज, जिस कार्लेनीकी आप इतनी प्रशंसा कर रहे हैं वह मैं ही हूँ। मैं सारे पेरिसको कहकहा लगवा सकता हूँ; पर मेरी अपनी बात पूछिए तो मुझसा उदास और दुःखी जीव शायद ही कोई हो।" कार्लेनी एक नक्काल मात्र था, इसलिये उसमें स्वयं विनोद करनेकी सामर्थ्य होनेमें सन्देह हो सकता है। परन्तु शेरिडनका स्वयं विनोदी लेखक होना प्रसिद्ध है। पर उसके विषयमें भी कहा जाता है कि वह बहुत ही कम हँसता था।

(५२) ऊपरकी विवेचनामें यह दिखाया जा चुका कि

विनोदका मनोभावोंसे कितना निकटका सम्बन्ध है । चोज या चतुरालापकी तरह विनोद प्रायः थोड़े शब्दोंमें ग्रथित नहीं किया जा सकता । हाँ, शब्दरचना लम्बी चौड़ी होने पर भी इसमें एक प्रकारका औचित्य अवश्य रहता है । अर्थात् यद्यपि चोज की तरह विनोदका सार एकही कल्पनामें ग्रथित नहीं होता और विनोद-दर्शनके परिस्थितिवर्णनपर अवलम्बित होने के कारण शब्दविस्तार विनोदका पोषक ही होता है, तथापि औचित्यविचारके पालनमें त्रुटि होनेसे हास्यरसके भंग अथवा अपकर्ष होनेकी सम्भावना होती है । एक ही बात दो ऐसी रीतियोंसे कही जा सकती है जिनमेंसे एकसे वह विनोदवचन हो और दूसरीसे हास्योत्पत्तिके सर्वथा अयोग्य निरर्थक बकवाद । शब्दके औचित्यका विचार चोज और विनोदवचन दोनों में बराबर ही रखना पड़ता है । पर शब्दविस्तारमें अन्तर पड़ने का कारण यह है कि चोजमें केवल दो वस्तुओंकी कल्पनाओंका अकल्पित अथवा अनपेक्षित सम्बन्ध जोड़ा जाता है और विनोदवचनमें असम्बद्धताका प्रकार अथवा परिस्थिति जितनी ही स्पष्ट करके कही जाती है उसमें उतनाही विनोद प्रस्फुटित होता है । चोजकी परिसमाप्ति इकहरी कल्पनामें होती है । इसकारण उसका शब्दविस्तार अधिक नहीं होता । सभी जानते हैं कि कभी कभी एक ही विनोदात्मक कल्पनाको विकासके लिये नाटकों अथवा विनोदात्मक उपन्यासोंमें गर्भांकके गर्भांक अथवा पैराग्राफके पैराग्राफकी आवश्यकता पड़ जाया करती है । जब नासमझी या लोकविपरीत स्वभावदर्शनकी सहायतासे हास्यका उद्दीपन करना होता है तब थोड़े शब्दोंसे विनोदवचनकी रचना हो सकना असम्भव नहीं है । इतना ही नहीं, ऐसे अवसरोंपर शब्दविस्तार जितना ही अधिक होता है विनोदका रंग उतनाही अधिक खुलता है ।

(५३) चोंजकी तरह विनोदवचनके सम्बन्धमें भी हमारे जो विचार हैं, वे नीचे दिए एक दो उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायँगे—

(१) उष्ट्राणां च गृहे लग्नं गर्दभाः शान्तिपाठकाः ।
परस्परं प्रशंसन्ति अहो रूपं अहो ध्वनिः ॥

ऊँटके घर ब्याहमें गधेने शान्तिपाठ किया। पश्चात् वे परस्पर एक दूसरेकी प्रशंसा करने लगे । एकने कहा—"वाह तुम्हारा रूप कितना सुन्दर है।" इसपर दूसरेने कहा—"वाह क्या कहना है, तुम्हारी आवाज कितनी सुरीली और मीठी है।"

(२) निर्मित्सुः सुदतीमजो विरचिते वक्त्रे शशिभ्रान्तितः,
कोशीभूत निजाम्बुजासनमधिष्ठातुं न शक्तो विधिः ।
मध्यं विस्मृतवान् कुचौ च कठिनौ पीनौ नितम्बौ कचान्,
वक्त्रान्निर्मितवान् मतिः स्फुरति हि स्वस्थे नृणांचेतसि ॥

अर्थ—"ब्रह्माने इस सुदतीका निर्माण करते समय प्रथम इसका मुख बनाया । इससे कमलोंको जान पड़ा कि चन्द्रोदय हुआ है; वे सङ्कुचित होने लगे। परन्तु ब्रह्माका आसनभी कमल ही ठहरा । सो उसके सङ्कुचित होनेके कारण उन्हें उसपर बैठनेमें कष्ट होने लगा । इसलिये इस परेशानीमें शेष अंगोंकी रचना उनसे अच्छीतरह न होसकी । स्तन और नितम्ब कठिन और स्थूल रह गए। बाल टेढ़े और ऐंठे हुए थे; उन्हें वे सरल न करसके,। और कमर बनाना तो वे बिलकुल भूल ही गए। तात्पर्य्य यह कि चित्त स्वस्थ रहते ही काम अच्छीतरह किया जा सकता है; मारामारके काम अच्छे नहीं होते।" क्षणिक

विचारसे यहाँ कविका तात्पर्य्य यह जान पड़ता है कि देहरचना के समय ब्रह्माका चित्त अस्थिर था इससे वह सुन्दर न हो सकी; पर उसमें जो दोषस्थल बताए गए हैं वे वस्तुतः सौन्दर्य्यस्थल हैं और सौन्दर्य्यवर्णन ही कविका अभीष्ट है। और इस अर्थचमत्कारका अन्त "मतिःस्फुरति हि स्वस्थे नृणां चेतसि" इस व्याज निन्दात्मक विनोदपूर्ण वाक्यमें किया गया है।



चौथा भाग।

हास्य रस।

(५४) अँगरेज़ी साहित्य के ग्रन्थों में तो हास्य की विवेचना उसे "रस" मान कर नहीं की गई है पर संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में उसका बहुत ही अच्छा और विस्तृत वर्णन किया गया है। यद्यपि और रसों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि हास्य रस की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है तो भी और और रसों की भाँति उसके भी अंग, उपांग, भाव, विभाव आदि दिये गए हैं। संस्कृत-ग्रन्थकारों ने हास्य रस पर पुरुषत्व का आरोप किया है। उसका रंग गोरा माना गया है और साहित्य-शास्त्रकारों का संकेत है कि इस रस पर प्रमथ नामक देवता का अधिराज्य है। हास्य रस का स्थायी भाव हास है। उसके विभाव अर्थात् उत्पत्ति-कारण वस्तु मात्र में देखी हुई विकृति अथवा विपरीतता, व्यंगदर्शन, परचेष्टा का अनुकरण, असंबद्ध-प्रलाप आदि हैं और उसके 'अनुभाव' होंठ, नाक या गालों का स्पंदन, दृष्टि का व्याकोश, पेट पकड़ कर हँसना आदि हैं। अर्थगोपन, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा स्वप्न आदि को हास्य का व्यभिचारी भाव माना है। हास्य दो प्रकार का होता है। एक आत्मस्थ और दूसरा परस्थ। जिस समय मनुष्य स्वयं हँसता है उस समय उसे 'आत्मस्थ' हास कहते हैं और जिस समय वह दूसरों को हँसाता है उस समय उसे 'परस्थ हास' कहते हैं। दूसरी रीति से हास्य के और भी छः भेद किए गए हैं:—
(१) स्मित, (२) हसित, (३) विहसित, (४) उपहसित,

(५) अपहसित और (६) अतिहसित। इनमें से स्मित और हसित श्रेष्ठ लोगों के योग्य हैं ; विहसित और उपहसित दोनों प्रकार मध्यम श्रेणी के माने गए हैं और अपहसित तथा अतिहसित हास की गणना अधम हास में की गई है। साहित्यशास्त्र में इन सब प्रकारों का अलग अलग वर्णन किया गया है। जिस समय गाल पर जरा सिकुड़न पड़ती है, आँखें कुछ विकसित होती हैं, नीचे का होंठ कुछ हिलने या फड़कने लगता है, दाँत दिखलाई नहीं पड़ते, दृष्टि कुछ कटाक्ष-पूर्ण हो जाती है और इन सब कारणों से चेहरे पर एक प्रकार का माधुर्य्य आता है तो उसे स्मित हास कहते हैं। जिस हास में मुँह, गाल और आँखें फूली हुई जान पड़ती हैं और दाँतों की पंक्तियां कुछ कुछ दिखलाई पड़ती हैं उसे हसित कहते हैं। विहसित में हँसने की क्रिया शब्दयुक्त होती है और लोग उसे सुन लेते हैं ; और इसमें आँखें कुछ सिकुड़ जाती हैं। उपहसित में नथुने फूल जाते हैं, सिर और कन्धे सिकुड़ जाते हैं और दृष्टि कुछ वक्र हो जाती है। जिस हास्य के कारण आँखों में जल आ जाय, सिर तथा कन्धे स्पष्ट रूप से हिलने लगें और मनुष्य अपना पेट पकड़ ले * उसे अपहसित कहते हैं। अतिहसित में हास्य के सब लक्षण और परिणाम बहुत ही स्पष्ट होते हैं और मनुष्य को हँसते हँसते पेट पकड़ना पड़ता है। नाट्य-शास्त्रों में कहा है कि हास्य के अभिनय के योग्य दृष्टि को 'हास्या' कहते हैं।

संस्कृत साहित्य में हास्य रस के अधिकांश उदाहरण भाण और प्रहसन में मिलते हैं। भाण का प्रधान रस हास्य नहीं है;

*Laughter holding both his sides.

तथापि विट आदि पात्रों के 'निपुण' भाषणों से, "धूर्त्त" चरित्रों के विनोदपूर्ण वृत्तान्तोंसे हास्य रस प्रकट होता है। प्रहसनों में तो केवल हास्य रस ही प्रधान होता है और 'पाखंड' तथा 'कुहिनी' आदि नीच पात्रों के भाषणों से प्रकट होता है। अच्छे अच्छे नाटकों और प्रकरणों में भी हास्य रस रहता है। पर हाँ, उस स्थान पर उसका स्वरूप गौण होता है और विदूषक आदि छोटे दरजेके पात्रों की बातचीतमें रहता है; और साहित्य शास्त्रकारों का मत है कि उसका कार्य्य शृंगार आदि मुख्य रसों का पोषण करना होता है।

(५५) साहित्य-शास्त्रकारों ने हास्य रस का वर्णन करते समय उसके जो अच्छे अच्छे उदाहरण दिए हैं उनसे इस बात का अच्छा पता लगता है कि उत्तम प्रकार के हास्य रस के स्वरूप के सम्बन्ध में उनकी कैसी कल्पना थी। इसलिये इस स्थान में उनमें से कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

साहित्यदर्पण में हास्य रस के उदाहरण में यह श्लोक दिया गया है ;—

गुरोर्गिरः पञ्च दिनान्यधीत्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान् समागता कुक्कुटमिश्रपादाः॥

अर्थात्—यह देखिए, कुक्कुट मिश्र आए, इन्होंने गुरु से कुल जमा पाँच दिन शिक्षा पाई है, सारा वेदान्तशास्त्र तीन दिनमें पढ़ा है और तर्कशास्त्रको तो फूल की तरह सूँघ डाला है।

रसगंगाधर में हास्य का यह उदाहरण दिया गया है:—

श्री तातपादैर्विहिते निबन्धे निरूपिता नूतनयुक्तिरेषा।
अगं गवां पूर्वमहो पवित्रं न वा कथं रासभधर्मपत्न्याः॥

अर्थात्--"हमारे पिता ने अपनी पुस्तक में एक नई युक्ति रखी है; (वह कहते हैं) गौ का अंग तो अब तक पवित्र माना ही जाता था; पर आगे से गधी भी क्यों न वैसी ही पवित्र मानी जाय ?"

काव्यप्रकाश में यह उदाहरण दिया गया है:--

आकुंच्य पाणिमशुचिं मम मूर्ध्नि वेश्या
मंत्रांभसां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे।
तारस्वनं प्रतितथूत्कमदात्प्रहारम्
हाहा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्म्मा ॥

विष्णुशर्म्मा नामक किसी दुराचारी विद्वान् ब्राह्मण को दिल्लगी उड़ाता हुआ कोई कहता है—"देखिए,कैसे मजे की बात है। विष्णुशर्म्मा 'हाय हाय' करके रोते और कहते थे कि मेरे जिस मस्तक पर मंत्रों से पवित्र किया हुआ जल छिड़का गया था उसी संस्कृत मस्तकपर इस वेश्याने अपने पवित्र हाथोंसे तड़ातड़ चपत लगाए।"

मन्दारमरन्द चम्पूमें यह उदाहरण दिया गया है:—

लेखिनीं इत इतो विलोकयन् कुत्र कुत्र न जगाम पद्मभूः।
तां पुनः श्रवणसीमसंगतां प्राप्य नम्रवदनः स्मितं दधौ ॥

अर्थात्—कलम तो कानपर रखी हुई थी और उसे इधर उधर खूब ढूँढा; अन्त में वह कानपर ही मिली। यह देखकर उसे हँसी आई और उसने सिर नीचा कर लिया।

सुभाषित-रत्न-भाण्डागारमें हास्य रसके जो उदाहरण दिए गए हैं, उनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं:—

जिह्वायाःछेदनं नास्ति न तालुपतनाद्भयं ।
निर्विशेषेण वक्तव्यं निर्लज्जः को न पण्डितः ॥

'जीभ कट नहीं जाती, सिर फट नहीं जाता, तब फिर जो मुँहमें आए सो कह डालनेमें हरज ही क्या है ? निर्लज्ज मनुष्य पण्डित बननेमें देर क्यों करे ?'

परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे मा प्राणेषु दयां कुरु ।
दुर्लभानि परान्नानि प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥

और भी:—

पूर्वं चेटी ततो वेटी पश्चात् भवति कुट्टिनी ।
सर्वोपायपरिभ्रष्टा वेश्या भवति तापसी ॥

(अर्थ बहुत सहज और स्पष्ट हैं)

सामगानादिदं ते नोच्छिष्टमधरं कुरु ।
उत्कण्ठितासि चेद् भद्रे वामं करणं दशस्व मे ॥

एक अरसिक वैदिक ब्राह्मण किसी रमणी से कहता है—हे भद्रे ! मेरे यह होंठ सामवेद का गान करते करते बहुत पवित्र हो गए हैं। उन्हें तुम व्यर्थ जूठे मत करो। यदि तुममे किसी प्रकार न रहा जाता हो तो तुम मेरा बायाँ कान ही मुँहमें लेकर चुभलाओ।

बिलाद्बहिर्बिलस्यांतः स्थितमार्जारसर्पयोः ।
मध्ये चाखुरिवाभाति पत्नीद्वययुतो नरः ॥

अर्थ—"दो स्त्रियोंवाले पतिकी दशा उस चूहे की सी होती है जिसके बिलमें तो साँप और बिलके बाहर बिल्ली हो।"

सदा वक्रः सदा क्रूरः सदा पूजामपेक्षते ।
कन्याराशिस्थितोनित्यं जामाता दशमो ग्रहः ॥

अर्थ—"दामाद दसवाँ ग्रह है। वह सदा वक्र और क्रूर रहता है, सदा पूजा चाहता रहता है और सदा 'कन्या' राशिपर स्थित रहता है।"

उपभुक्तखदिरवीटकजनिताधररागरंगभंगभयात् ।
पितरि मृतेऽपि हि वेश्या रोदिति हा तात तातेति ॥

अर्थ—"वेश्याका बाप यदि मर जाय तो वह "पिता पिता" नहीं चिल्लाती बल्कि "तात तात" करके रोती है। क्योंकि पिता शब्दमें का 'प' ओष्ठ्य है और उसके उच्चारणसे शायद होंठोंपर की पानकी लाली मिट जाय। इसीलिये वह 'तात तात' कहकर रोती है, क्योंकि त वर्ण दन्त्य है और उसके उच्चारणमें होंठोंकी रगड़की सम्भावना नहीं होती।"

श्रमणाः श्रावकवध्वाः सुरतविधौ दशति नाधरं दत्तं ।
मदिराक्षि मांसभक्षणममत्समये निषिद्धमिति ॥

श्रावक-पत्नियोंकी दिल्लगी उड़ाता हुआ एक दिल्लगीबाज कहता है:—श्रावक लोग प्रेम-प्रसंगमें भी स्त्रीका चुम्बन नहीं करते; क्योंकि उसके होंठमें दाँत लगनेसे शायद मांस-भक्षणका दोष लग जाय।

अपांडुगः शिरसिजास्त्रिवली कपोले
दन्तावलिर्विगलिता न च मे विषादः ।
एवंविधो युवतयः पथि मां विलोक्य
तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः ॥

एक रँगीला वृद्ध कहता है:—"क्या करें! सिरके बाल सफेद हो गए, गालोंपर झुर्रियाँ पड़ गईं, दाँत टूट गये; पर इन सब बातोंका मुझे कोई दुःख नहीं है। हाँ, जब रास्तेमें चलते समय मृगनयनी स्त्रियाँ मुझे देखकर पूछती हैं कि—'बाबा किधर चले?' तो उनका यह पूछना मेरे सिरपर वज्र की तरह गिरता है।"

(५६) हास्य रसका वर्णन तो संस्कृत साहित्य में है, पर अन्य रसोंको देखते हुए जान पड़ता है कि उसकी ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। संस्कृत साहित्य में (और हिन्दी काव्यमें भी) सारी शक्ति केवल शृंगार रसके लिये ही खर्च कर दी गई है। यदि यह कहा जाय कि संस्कृतका काव्य और शृंगार दोनों मिलकर एक हो गए हैं तो अत्युक्ति न होगी। नौ रसोंके अनुक्रममें शृंगार रस ही सबसे पहले स्थान पर विराजमान दिखाई पड़ता है। यद्यपि इस बातका कोई सबल आधार या प्रमाण नहीं है कि सब रसोंका क्रम केवल उनके महत्त्वकी दृष्टि से ही लगाया गया है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि शृंगार रसको केवल संयोग से ही पहला स्थान मिल गया है। सुभाषित-रत्न-भाण्डागार में संस्कृत साहित्य के सब प्रकारके पद्योंका जिस प्रकार समावेश किया गया है उसे देखते हुए शृंगारके महत्त्वकी ही कल्पना होती है। भाण्डागारमें शृंगार रसके अंगों और उपांगोंके १८८ पृष्ठोंमें हजारों पद्य दिए गए हैं। पर उसीमें हास्य रसको केवल ५६ श्लोकोंमें ही छुट्टी मिल गई है। और वीर-रसके केवल ५१ और करुण-रसके केवल ४१ श्लोक दिए गए हैं। इससे प्रकट होता है कि शृंगार रसको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दिया गया है। शृंगार रसको प्रधान रस माननेकी प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि कुछ लोगोंने

श्रुतिके "स एवैको रसः" वचनका अर्थ साहित्य-शास्त्रकी दृष्टि से यह लगाया है कि सब रसोंका समावेश केवल एक रसमें होना चाहिए और वह एक रस शृंगार रस है। पर जहाँ तक पता लगता है कहीं सयुक्तिक रीतिसे यह नहीं दिखलाया गया है कि एक मात्र शृंगार रसमें शेष सब रसोंका समावेश या लय किस प्रकार हो सकता है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि मानव-सृष्टिकी परम्परा चलानेके लिये रति-भाव ही शृंगार रस का स्थायी भाव है; इसलिये शृंगार रसको सबसे पहला स्थान मिलना चाहिए। पर यह युक्ति भी ठीक नहीं है। क्योंकि मानव-सृष्टिकी परम्परा चलाने अर्थात् प्रजोत्पत्ति करनेके लिये जिस प्रकार रति-भाव आवश्यक है उसी प्रकार प्रजासंरक्षण के लिये "वात्सल्य" भाव भी आवश्यक होना चाहिए। प्रजोत्पत्ति होनेके उपरान्त भी यदि प्रजा-संरक्षण न होगा तो सृष्टि-परम्परा नहीं चल सकती।* प्रजा-पालन जैसे महान् कार्य्यकी सिद्धिके लिये रति-भाव की जरा सी सहायता की भी आवश्यता नहीं होती। केवल यही नहीं, बल्कि स्त्री-पुरुषकी परस्पर प्रीतिके कारण सन्ततिकी कामनाका भी कुछ अंशोंमें विरोध या नाश होता है।† इससे सिद्ध होता है कि केवल अपत्य-प्रेम या वात्सल्य-भाव ही अधिक बलवान् होकर सृष्टिका क्रम चलानेमें मुख्य सहायक होता है। इस दृष्टिसे देखा जाय तो शृंगार की अपेक्षा वत्सल रस ही अधिक महत्त्वका ठहरता है; और बहुतों

---

*प्रो० ड्रमंड की Ascent of Man नामक पुस्तकमें इस विषयकी बहुत अच्छी तरह विवेचना की गई है।

†फ्रान्स आदि देशोंमें इस सम्बन्धमें कितने अनर्थ होते हैं और प्रजा-वृद्धिमें इससे कितनी हानि होती है, सो प्रसिद्ध ही है।

ने जहाँ उसका समावेश दसवें स्थान पर किया है वहाँ उसे बढ़ा कर और इधर कुछ ऊँचे स्थान पर लाना चाहिए। कुछ लोग शृंगार रसको प्रथम स्थान देनेका यह कारण बतलाते हैं कि साधारणतः उसकी व्याप्ति समस्त सजीव जगत्में पाई जाती है। हास्य रसकी तरह वह केवल मनुष्यके बाँटे ही नहीं पड़ा है। पर बात यह है कि रसका महत्त्व सारी सजीव सृष्टिमें अग्रगण्य माने जानेवाले मनुष्यके सम्बन्धसे निश्चित करना चाहिए। उदाहरणार्थ, हास्य रस प्रायः मनुष्य-जातिमें ही पाया जाता है, अन्य प्राणियोंमें नहीं। और जिस प्रकार अन्य सृष्टिसे अलग मनुष्यको मिली हुई बुद्धि श्रेष्ठ है उसी प्रकार और उसी कारण से हास्य रसको भी श्रेष्ठ मानना पड़ता है; और सारी सृष्टिमें पाया जानेवाला शृंगार रस उससे कम महत्त्व का ठहरता है। रस-विचार अथवा साहित्यशास्त्रका कर्त्ता यदि केवल मनुष्यही है और केवल वही उनका आनन्द ले सकता है तो केवल उसीमें पायजानेवाले हास्यको यदि कोई रस-विचार अथवा साहित्य-शास्त्रमें सबसे पहला स्थान दे तो उसका यह कृत्य कुछ अनुचित न होगा। इसके अतिरिक्त एक दूसरी युक्ति और है। लोग कहते हैं कि मनुष्यके शरीरमें शृंगार रस-सम्बन्धी जैसी स्पष्ट इन्द्रिय है वैसी और किसी रसके सम्बन्धकी नहीं है; और इसीलिये शृंगार रसही सबसे श्रेष्ठ है। पर यह युक्तिभी ठीक नहीं है और न इसका कोई अर्थ ही है। मन भी एक मानवी इन्द्रिय ही है। केवल इन्द्रिय ही नहीं बल्कि वह सबसे श्रेष्ठ इन्द्रिय है और उसीको हास्य रसकी इन्द्रिय कह सकते हैं। "आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेत-त्पशुभिर्नराणां" आदि सर्वमान्य वचनसे यह बात स्पष्ट है कि अन्य सब इन्द्रियोंकी क्रियाओंकी अपेक्षा मन-इन्द्रिय और उसकी क्रियाका अधिक महत्त्व है। एक दूसरी दृष्टिसे विचार करनेपर

यह बात मालूम हो जायगी कि मनुष्य मात्रको शृंगारका अनुभव केवल कुछ नियमित काल तक ही होता है । परन्तु हास्य आदि अनेक रसोंका अनुभव जन्म भर होता रहता है । नौ अथवा दस रसोंका यदि महत्त्वकी दृष्टिसे ठीक ठीक अनुक्रम लगाना हो तो हास्य और करुणा रसही सबसे पहले आवेंगे; उनके उपरान्त वीर रस रहेगा ; इसके उपरान्त क्रममें वत्सल शृंगार, अद्भुत, रौद्र, वीभत्स आदिको स्थान मिलेगा। चाहे मनुष्यमात्रके जीवनमें होनेवाली भाव-जागृतिके विचारसे देखिए अथवा उससे होनेवाले आनन्द और उसके उपयोगकी दृष्टिसे देखिए, हास्य, करुणा और वीर ये तीनों रस शृंगार रसकी अपेक्षा अधिक महत्त्वके प्रमाणित होंगे । क्योंकि प्रायः हास्य और शोकमें ही मनुष्य मात्रका अनुभव बँटा हुआ है। आनन्द उत्पन्न करनेवाला पदार्थ प्राप्त करने और दुःख उत्पन्न करनेवाली बात टालनेमें ही मनुष्य मात्रकी सारी प्रवृत्ति रहती है । और इस प्रवृत्तिके विजयी होनेमें सदा उस वीर रसकी सहायताकी आवश्यकता हुआ करती है जिसका स्थायी भाव "उत्साह" है। मनुष्यमात्र सदा सुख या आनन्द प्राप्त करने, हास्यके अनेक प्रकारोंमें से किसी एक प्रकारका हास्य उत्पन्न करने और दुःख या करुणा रसका अनुभव करानेवाली बात दूर करनेके प्रयत्नमें ही लगा रहता है और इन सब बातोंकी सिद्धिके लिये उसे पहले वीर रसका अनुभव करना पड़ता है, अर्थात् अपने शरीर में उत्साह उत्पन्न करना पड़ता है । वीर रसका उपयोग केवल योद्धाओं और समर-भूमिमें लड़नेवालोंके लिये ही नहीं है, बल्कि मनुष्यमात्रके नित्यप्रतिके व्यवहारमें भी वीर रसका आविर्भाव दिखलाई पड़ता है । शृंगार रसका आनन्द जीवनकी कुछ विशेष स्थितिमें ही लिया जा सकता है । पर करुणा और हास्यके सम्बन्धमें यह बात नहीं है । उदाहरणार्थ, शृंगार रसकी

कविताका आनन्द मनुष्यको लड़कपन या बुढ़ापेमें नहीं मिल सकता; शृंगारिक मनोभावोंकी जागृति केवल युवावस्थामें ही हो सकती है; और जब तक मनुष्यमें भावोंकी जागृति हो सकती है तभी तक वह उन भावोंके सम्बन्धी रसोंके अनुभव करनेका पात्र रहता है। पर करुणा और हास्यरसका अनुभव मनुष्यको बालक, युवा और वृद्ध तीनों अवस्थाओंमें होता है। हम लोग नित्यप्रति देखते हैं कि हास्य रसकी बातें सुन या पढ़ कर छोटे छोटे बच्चे भी हँसते हैं और करुणा रसकी बातें सुन या पढ़ कर वही बालक रोने लग जाते हैं। वृद्ध मनुष्यों पर करुणा रसका प्रभाव तो बहुत शीघ्र पड़ता ही है, पर उनमेंसे बहुतसे आनन्दी और दिल्लगीबाज भी देखनेमें आते हैं। भयानक, रौद्र अद्भुत आदि रसोंका अनुभव करनेके लिये ऊपर लिखी हुई किसी प्रकारकी मर्यादा या सीमाकी आवश्यकता नहीं; पर इन सब रसोंका अनुभव बहुतही थोड़े प्रसंगों पर होता है। पर यदि यह कहा जाय कि हास्य और करुणा रसका अनुभव मनुष्यको पग पग पर हुआ करता है तो कुछ अनुचित न होगा। इन रसोंका अधिकार छोटे, बड़े, अमीर, गरीब सब पर और सब स्थितियों में बना रहता है। यदि करुणा और हास्य रसपर कुछ विचार-पूर्वक ध्यान दिया जाय तो जान पड़ेगा कि मनुष्यको करुणा रसकी अपेक्षा हास्य रसका अनुभव ही अधिक होता है। करुणा रससे हृदयके आर्द्र होनेके लिये किसी सीमा तक अपनी हानि होनेकी आवश्यकता होती है और वह हानि अपनी किसी प्रिय वस्तुकी होनी चाहिए। दूसरों की हानि देख करभी दुःखी होने-वाले लोग संसारमें हैं, पर यह बात सब लोग स्वीकार करेंगे कि ऐसी प्रकृतिके लोग संसारमें बहुतही कम हुआ करते है। परन्तु हास्य रसके सम्बन्धमें वह बात नहीं है। भिन्न भिन्न वस्तुओंमें एक प्रकारकी असंबद्धता दिखलाई पड़नेके कारण

हास्य रसकी उत्पत्ति होती है। संसारमें यह असम्बद्धता प्रायः पग पग पर दिखलाई पड़ती है; और वह असंबद्धता चाहे अपनेसे सम्बन्ध रखती हो और चाहे पराएसे, पर उसे देखकर मनुष्यका मनोविनोद अवश्य होता है। इस प्रकार विचार करनेके उपरान्त यह बात सब लोग स्वीकार कर लेंगे कि हास्य रसको इस समय जितना महत्त्व दिया जाता है, वह उससे कहीं अधिक महत्त्वका पात्र है।

(५७) हास्यरसकी मीमाँसा करते हुए उस रसके विभावों का भी कुछ वर्णन कर देना आवश्यक है। स्थूल रूपसे विभाव शब्दका अर्थ 'कारण' कर सकते हैं, पर यह कारण उस रसकी उत्पत्ति या उद्दीपन करनेवाला होता है। मूल मानसिक कारण कोई और होने पर भी प्रसंग या स्थितिके रूपमें उसके और भी अनेक गौण कारण हुआ करते हैं; और इन्हीं गौण कारणोंको विभाव कहते हैं। 'विभाव' शब्दकी व्याख्या रसगंगाधरमें इस प्रकारकी गई है:—

स्थायिभावानां लोके तत्तन्नायकगतानां यानि आलम्बनतया उद्दीपनतया वा कारणत्वेन प्रसिद्धानि तान्यत्रेषु काव्यनाट्ययोः व्यज्यमानेषु विभावशब्देनव्यपदिश्यते।"

अर्थात् अनेक प्रकारके अर्थ-चमत्कार, स्थिति या प्रसंग आदि जो हास्य रसके उद्दीपक होते हैं उन्हें हास्य रसका 'विभाव' कहते हैं। जिस प्रकार पदार्थ अनगिनत हैं और यथासमय उनकी अनगिनत घटनाएं हो सकती हैं उसी प्रकार मनुष्य अपनी कल्पना-शक्तिसे भी अनगिनत घटनाएं खड़ी कर सकता है। मनुष्य अपने जन्मकालसे लेकर अब तक बराबर हँसता ही आया है; पर यह बात सम्भव नहीं है कि कल

उसके हास्यका उद्दीपन करनेके लिये जो घटना हुई थी, हूबहू वही घटना आज भी हो; अथवा जिस घटनाके कारण मनुष्य आज हँस रहा है, हूबहू वही घटना कलभी उसके हास्यका उद्दीपन करनेके लिये होगी। अर्थात् ये कारण प्रतिदिन और प्रतिक्षण एक दूसरेसे भिन्न होंगे; और इसीलिये हम उन्हें अनगिनत कहते हैं। इतना होने पर भी ये घटनाएं यद्यपि अनगिनत हैं तथापि भिन्न भिन्न विभावोंमें जो समानता दिखाई पड़ती है उसके अनुसार उनकी जातियों या गणोंका निश्चय हो सकता है। हास्य रसका विचार करते हुए पहले ही कहा जा चुका है कि वस्तु मात्रमें देखी हुई विकृति अथवा विपरीतता, व्यंग्यदर्शन, पराई चेष्टाका अनुकरण, असंबद्ध प्रलाप आदि उसके विभाव हैं; और यही विभावोंका वर्ग वा गण है। वास्तवमें इनका वर्णन केवल उपलक्षण स्वरूप हुआ है, उसके प्रधान प्रधान भेद इस प्रकार हैं:—

(१) वस्तुकी नवीनता अथवा अपरिचितता, अर्थात् किसी एक अथवा दो वस्तुओंका नवीन और अपूर्व सम्बन्ध दिखाई पड़ना; (२) वस्तु-स्वरूप-विकृति अर्थात् किसी अच्छी चीजका तुरन्तही बुरे स्वरूपमें दिखाई पड़ना; (३) शरीर आदिकी किसी नियमित सीमा तक कुरूपता; (४) नैतिक दृष्टिसे मनुष्य स्वभावकी किसी प्रकारकी कुरूपता; (इसमें केवल थोड़ेसे छोटे मोटे दुर्गुणोंका समावेश होता है) (५) अपवाददर्शन—अर्थात् वस्तुओं आदिका जो स्वरूप, नियम या क्रम आदि नित्य दिखलाई पड़ता है उसमें कोई विरोध या दोष दिखलाई पड़ना; (६) सचेतन प्राणियोंके सम्बन्धमें और विशेषतः मनुष्योंके सम्बन्धमें शिष्ट-सम्मत नियमों या मर्य्यादा आदिका उल्लंघन; (७) प्राणी मात्रपर आनेवाली बहुतही क्षुद्र आपत्ति; (८)

ऐसी बातें करना जो असभ्यता-पूर्ण समझी जाती हों और जो समाजमें कहने योग्य न हों ; (९) मिथ्याभियोग ; अर्थात् हमें जो अधिकार नहीं हैं, धृष्टतापूर्वक अपने आपको उनका अधिकारी प्रकट करना ; (१०) विशेष प्रकारका अज्ञान या बुद्धिमांद्य ; (११) मनकी विशेष प्रकारकी कोमलता या भोलापन ; (१२) सब प्रकारका अतिशयत्व—अर्थात् किसी बातका सीमासे बाहर होजाना ; (१३) व्याज अथवा कोई विशेष आशय रखकर बोलना—अर्थात् किसी विशेष हेतु वा अभिप्रायको छिपाने अथवा किसी विशेष हेतु वा अभिप्रायके न होनेकी अवस्थामें उसके अस्तित्वका आभास प्रकट करनेके लिये बोलना ; (१४) पदार्थोंकी भाँति शब्दोंका भी विपरीत या असंबद्ध सम्बन्ध दिखलाना ; (१५) मिथ्या-साम्य-दर्शन अथवा मिथ्या-विरोध दर्शन ; (१६) जड़ बुद्धि और तीव्र बुद्धिका विरोध ; (१७) समझनेमें गड़बड़ ; (१८) विमनस्थता अथवा होश हवास कायम रहने पर भी पागलोंकी सी बातें करना ; (१९) परचेष्टा का अनुकरण आदि आदि* ।

---

* तत्त्ववेत्ता लाकके मतसे Wit अर्थात् चोजके प्रकार और हास्यके विभाग देस प्रकार है:—

(1) Metaphors. (2) Similitudes. (3) Allegories. (4) Enigmas. (5) Mottos. (6) Parables. (7) Fables. (8) Dreams. (9) Visious. (10) Dramatic writings. (11) Burlesque. (12) Generally all methods of allusion.

एक दूसरे अँगरेज ग्रंथकार Leigh Hunt के मतके अनुसार Wit अर्थात् चोजके प्रकार और हास्यके विभाव इस प्रकार है:—

(५८) इन विभावों पर साधारणतः विचार करनेसे यह कहा जा सकता है कि काव्यमें जो जो दोष माने गए हैं वे सब

---

(1) Direct Simile. (2) The Metaphor. (3) Poetical Process or the leap to a conclusion or the omission of intermediate particulars in order to being the two ends of a thought or circumstances together. (4) Irony. (5) Burlesque or pure mockery. (6) Parody. (7) Exaggeration or ultra-continuity and exaggeration in general (*i. e.* 1 Easiness and flow of extravagance. 2 Laudatory exaggeration. 3 Spririt of continuity. 4 Uunder-stood dulness. 5 Contempt expressed for one person by praise of another. 6 Extravagart imputation against a character. 7 Subtle and confounding contradiction of appearances. 8 Contemptuous mimicry. 9 Force rhyme. 10 Ludicrous panegyric and climax. 11 Ludicrous association of ideas and aspect of solemnity. 12 Burdeus of songs. 13 Pleasant bit of a superfluous information. 14 Puns. 15 Macaronic verses.) (8) Cross purposes or contradictory intentions mistaken by their entertainers for intentional ones. (9) Unconscions absurdity in man's character apart from mere circumstance. (10)

हास्यके विभाव हो सकते हैं *। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। काव्यमें दोष होनेके कारण उसकी रमणीयताकी हानि होती

Conscious humours indulged. (11) Humours of nations and classes.

पाठक यह बात तुरंतही समझ लेंगे कि वर्गीकरणके सिद्धांतोंकी दृष्टिसे देखते हुए इस वर्गीकरणमें बहुत गड़बड़ है।

---

*दुष्टंपदं श्रुतिकटु च्युतसंस्कृत्यमप्रयुक्तममर्थं ।
निहतार्थमनुचरितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधा ऽश्लीलं ॥
संदिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत् क्लिष्टम् ।
अविभृष्टविधेयांशं विरुद्धमतिकृत्समामगतमेव ॥
प्रतिकूलवर्णमुपहत लुप्तविसर्गं विसंधिहतवृत्तम् ।
न्यूनाधिककथितपदं पतत्प्रकर्षं समाप्त पुनरात्तम् ॥
अर्थांतरैकवाचकममवन्मतयोगमनभिहितवाच्यम् ।
अपदस्थपदसमासां संकीर्णं गर्भितं प्रसिद्धिहतम् ॥
भग्न क्रममक्रममतपरार्थं च वाक्यमेव तथा ।
अर्थे ऽपुष्टः कष्टो व्याहत पुनरुक्तदुष्क्रमग्राम्याः ॥
संदिग्धो निर्हेतुः प्रसिद्धि विद्याविरुद्धश्च ।
अनवीकृतः सनियमानियमविशेषाविशेष परिवृत्ताः ॥
साकांक्षे ऽपदयुक्तः सहचरभिन्नः प्रकाशितविरुद्धः ।
विध्यनुवाद युक्तस्त्यक्तपुनः स्वीकृते ऽश्लीलः ॥
व्यभिचारि रसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता ।

है और उसका काव्य-स्वरूप नहीं बच जाता। पर जिस समय या स्थल पर रमणीयताकी जान बूझ कर हानिकी जाती है उस समय वह हानि हास्य रसके अनुकूल ही हो जाती है। यदि कवितामें नाभिकी उपमा पातालसे दी जाय तो उससे काव्यकी शोभा नहीं बढ़ेगी, पर हास्य रसका उससे अच्छा उद्दीपन हो सकता है। मारवाड़की स्त्रियोंका वर्णन करते समय यह उपमा अतिशयोक्तिमूलक और हास्यरसकी उत्पादक होगी और जिस प्रबन्धमें ऐसा वर्णन होगा वह 'विनोद' के अंतर्गत आ जायगा। यही बात काव्यका प्रत्येक दोष लेकर सिद्ध की जा सकती है। अर्थात् यह सिद्ध किया जा सकता है कि काव्यके जितने दोष हैं वे सब हास्यरसके विभाव हो सकते हैं। जैसे च्युतसंस्कृति (व्याकरणके लक्षणोंकी हीनता) काव्यका एक दोष है। अब मान लीजिए कि किसी मनुष्यको अपनी विद्वत्ताका बड़ा घमंड है पर वास्तवमें उसे आता जाता कुछ भी नहीं; और लोग उसकी बेढंगी बातें सुन कर हँसी उड़ाते हैं; पर उसे उन बातों का कुछ भी ध्यान नहीं होता। यदि किसी ग्रंथकारको उसकी वास्तविक दशाका वर्णन करना हो और वह उस मनुष्यके मुँहसे ठीक ठीक "संस्कृति-च्युत" वाक्य निकलवा सके तो उससे बहुत अच्छा विनोद हो सकता है।

कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभावविभावयोः ॥
प्रतिकूल विभावादिग्रहो दीप्तिः पुनः पुनः।
अकांडे प्रथमच्छेदौ अंगस्याप्यतिविस्तृतिः ॥
अंगिनो ऽननुसंधानं, प्रकृतीनां विपर्य्ययः।
अनंगस्याभिधानंच रसे दोषाः स्युरीदृशाः ॥

(मम्मट)

ग्राम्य शब्दोंका उपयोग भी काव्यका एक दोष है, पर यदि उसका उपयोग जान बूझ कर या वक्ताके लिये उपयुक्त होनेके कारण किया जाय तो उससे लोगोंका मनोविनोद ही होगा। पतत्प्रकर्षता भी काव्यका एक दोष है पर उसके योगसे हास्यरसका बहुत अच्छा पोषण होता है। पतत्प्रकर्षताका यह उदाहरण लीजिए:—

प्रोज्ज्वल ज्वलनज्वाला विकटोरुमटाच्छटः।
श्यामत्रिपुकुलक्ष्माभृत् पातु वो नरकेसरी॥

इस श्लोकका प्रारम्भिक वर्णन अत्यन्त भयंकर और अन्तिम बहुत कोमल है। अर्थात् प्रकर्ष न हो कर एक प्रकारका आकर्ष ही हुआ है। पतत्प्रकर्षताको अँगरेजीमें Bathos कहते हैं। पोप कविकी Rape of the Lock नामक कवितामें इसके कई अच्छे अच्छे उदाहरण मिल सकते हैं *।

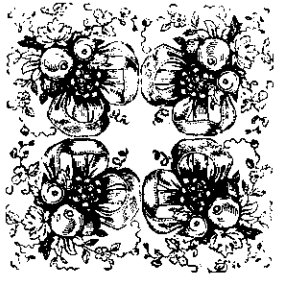
---

* Here Britain's statesmen aft' the fall foredoom,
Of foreign Tyrants and of Nymphs at home.
Here thou, great Anna! Whom three realms obey,
Dost sometimes counsel take and sometimes Tea.
* * * * * *
This day black Omens threat the brightest Fair.
That ev'r deservd a watchful spirit's care;
Some dire diraster, or by force, or slight;
But what, or where, the Fates have wrapped in right.
Whether the nymph shall break Diana's law,
Or some frail China jar receive a flaw,
Or stain her honour, or her new brockade,
Forget her prayers, or miss a masquerade.
Or lose her heart, or necklace, at a ball.
Not Louder shrieks to pitying heav'n are cast,
When husbands, or when lapdogs breathe their last,

प्रसिद्धि-विरुद्धता भी काव्यमें अर्थालंकारका दोष होसकता है ; पर यदि कवि जान बूझ कर वह दोष करे तो वह हास्यरस के लिये उपकारक ही होता है । उदाहरणार्थः—

झण झण मिति बहुभूषणशब्दमिश्रं
किं द्रौपदी इव पलायसे रामभीता ।
एष हरामि झटिति यथा हनूमान्
विश्रावसोः इव भगिनीं त्वां सुभद्रां ॥

इस श्लोकमें प्रसिद्ध-विरुद्ध कई ऐतिहासिक बातें दी गई हैं ; और इसी लिये यह श्लोक विनोदात्मक हो गया है। इसी प्रकार विवेचना करके यह बात अच्छे अच्छे प्रमाणोंसे सिद्धकी जा सकती है कि काव्यके जो दोष जान बूझ कर किए जायँगे वे हास्य रसके विभाव हो सकते हैं ।



पाँचवाँ भाग।

हास्यकी उत्पत्ति।

(५६) अनेक तत्त्ववेत्ता मनुष्यको हँसनेवाला प्राणी कहते हैं। किसी पदार्थ के लक्षण निश्चित करनेका नियम यह है कि अन्य पदार्थोंसे उसे अलग करनेवाले गुणोंका निर्देश कर दिया जाय ; और यदि इस दृष्टिसे देखा जाय तो जिस समय हम मनुष्यको हँसनेवाला प्राणी बतलाते हैं उस समय हमारे कहनेका तात्पर्य्य यह होता है कि प्राणियों की अन्य जातियाँ मनुष्योंकी भाँति नहीं हँस सकतीं और ईश्वरने यह देन केवल मनुष्यकोही दी है। प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओंने आज तक इस सम्बन्धमें जो कुछ खोजकी है उस पर विचार करते हुए मनुष्य यथार्थ रीतिसे इस बातका गर्व नहीं कर सकता कि ईश्वरने केवल मनुष्यको ही हँसनेके योग्य बनाया है। विकास-वादियोंके एक सर्वमान्य सिद्धान्तके अनुसार मनुष्योंके पूर्वज बन्दर या बनमानुस थे। यदि यह बात मानली जाय कि बन्दरसे भी अधिक जंगली स्थितिमें मनुष्यके पूर्वज हँस सकते थे तो भी यह मानना ही पड़ेगा कि यह गुण मनुष्यका स्व-सम्पादित नहीं है, बल्कि उसके पूर्वजोंका उपार्जित है। अर्थात् मनुष्योंमें इस समय हास्यका जितना विकास और पूर्णत्व दिखलाई पड़ता है उतना पहले नहीं था। और इस कारण मनुष्यकी ऊपर की हुई व्याख्यामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ती। ऊपर प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओंकी जिस खोजका जिक्र किया गया है उसमें वस्तु-निरी-

श्रणका जितना अंश है उतनाही अंश कोरे तर्कका भी है। तथापि इन दोनोंके मिश्रणसे उन लोगोंने जो सिद्धान्त ठहराए हैं वे बिलकुल ठीक नहीं कहे जा सकते।

(६०) इसमें सन्देह नहीं कि आनन्दसे खिलखिला कर हँसने, चित्त प्रसन्न होनेके समय खूब खुल कर हँसने, वस्तुओंकी असंबद्धता देख कर हँसने आदि आदि हास्यके जो श्रेष्ठ प्रकार हैं वे केवल मनुष्योंमें ही दिखलाई पड़ते हैं। लेकिन हास्यके जो कनिष्ठ प्रकार हैं वे अन्य प्राणियोंमें भी देखनेमें आते हैं। जिस समय ये प्राणी राग, लोभ आदि तीव्र मनोविकारों के अधीन नहीं रहते और आपसमें, और यदि वे पालतू हुए तो मनुष्योंके साथ, खेलते हैं उस समय उनके चेहरोंकी स्नायुमें गतिके कारण जो परिवर्त्तन होता है, उसका अधिकांश ऐसा ही होता है जिसे यदि 'हँसना' कहें तो कुछ अनुचित न होगा। इसमें सन्देह नहीं कि हम लोगोंका हँसी-ठट्ठा और मसखरापन उन प्राणियोंको बहुत पसन्द होता है। जिस प्रकार मनुष्य अपनेसे निर्बल और अशक्त प्राणीको पाकर अपने आनन्दके लिये उसे तरह तरहसे दिक करता और खिजाता है, उसी प्रकार अन्य प्राणी भी करते हैं। कोई बिल्ली या कुत्ता किसीको पा कर उसके साथ जिस प्रकार व्यवहार करता है उससे यह बात बहुत अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है। जिस प्रकार कुस्तीमें कोई पहलवान अपनेसे बहुत ही दुर्बल जोड़को पाकर उसे इधर उधर उलट पलट कर हँसता हँसता चित कर देता है उसी प्रकार बिल्ली या कुत्ता भी किसी चूहेको पाकर अपने पंजेमें गिरा देता है और जब वह उठ कर चलने लगता है तो उसे फिर पंजेसे मारता है। यह सब कृत्य करनेके समय उसके चेहरे पर एक प्रकारके जो बल पड़ते हैं यदि

उन्हें सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो जान पड़ेगा कि वे हास्यके कारण होनेवाली मुख-विकृतिके समान ही हैं। पर उनकी इस क्रिया में एक प्रकारका दुष्टता भी होती है। इसके अतिरिक्त हम लोग नित्य उनकी अनेक ऐसी क्रियाएँ भी देखते हैं जिनमें दुष्टताका लेश भी नहीं होता और जिनसे केवल उनके विनोद-प्रिय होनेका ही पता चलता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी कुत्तेको दूर फेंका हुआ पत्थर उठा लानेकी शिक्षा दी जाय तो उसे इस काम में इतना आनन्द मिलता है कि कभी कभी वह स्वयं अपने पंजोंसे पत्थर दूर ढकेलता और तब उसे उठा कर अपने मालिकके पैरोंके पास ला रखता है। उस दशामें लोग बार बार उसके मुँहकी ओर देखते हैं और कभी कभी उसे कष्ट देकर उसके साथ खेलवाड़ खेलते हैं। इस प्रकारके अनुभव प्रायः नित्य हुआ करते हैं। किसी नए कुत्तेको देख कर पहले तो सब कुत्ते खूब भौंकते हैं और तब थोड़ी ही देर बाद उससे इतने अधिक हिलमिल जाते हैं कि मानों उनका बहुत ही छोटी अवस्थासे साथ है। इससे भी कुत्तेके विनोदी स्वभावका पता लगता है। कुत्ते बाजारमें चलते समय चुपचाप पीछेसे किसी कुत्तेके बहुत पास पहुँच जाते हैं और तब अचानक जोरसे इस लिये भौंकने लगते हैं कि जिसमें वह दूसरा कुत्ता डर जाय। इस बातमें वे उन नटखट बालकोंसे बहुत मिलते जुलते होते हैं जो किसी अँधेरे स्थानमें छिप कर बैठ जाते हैं और किसी मनुष्यके वहाँ पहुँचने पर उसे डरानेके लिये जोरसे चिल्ला उठते हैं। तात्पर्य्य यह कि इस दृष्टिसे उन कुत्तों और बालकोंकी विनोदशीलता बहुत कुछ समान जान पड़ती है। प्रसिद्ध प्राणि-शास्त्र-वेत्ता प्रोफेसर मार्डनने एक बार एक बहुत विलक्षण और चमत्कारिक बात देखी थी। एक बार समुद्रके किनारे किनारे बालूमें एक कुत्तेने

एक गड्ढा खोदा था और उसमें कुछ कंकड़े रख कर ऊपरसे बालूसे भर दिया था; इतना कृत्य करके वह कुत्ता दूर बैठा हुआ तमाशा देखता था। जब कभी कोई कंकड़ा किसी प्रकार उस बालूमेंसे अपने हाथ, पैर या सिर निकालता तो उस कुत्तेको बहुत अधिक प्रसन्नता होती थी और वह उसके चारों ओर भौंकता हुआ खूब उछलता और कूदता था फिरता था। यह जिक्र एक ऐसे विनोदी स्वभाववाले कुत्तेका है जो जंगली था और जिसे किसी प्रकारकी शिक्षा नहीं मिली थी। पालतू होकर मनुष्योंके साथ रहने और शिक्षा पानेसे उसकी विनोदप्रियता और भी अधिक बढ़ जाती है। सरकस या अन्य खेलोंमें बहुतसे कुत्ते ऐसे काम करते हैं जिन्हें देखकर लोगोंको खूब हँसी आती है, पर उन कामोंके करनेका मुख्य कारण आज्ञापालनही होता है। तथापि उनके अतिरिक्त वे और जितने असंबद्ध और विनोदात्मक कृत्य करते हैं उन्हें देखते हुए यदि यह कहा जाय कि उनसे कुत्तोंको विनोद-सुख होता है तो कुछ अनुचित न होगा। बिल्ली का स्वभाव कुत्तेके स्वभावके समान विनोदी और खेलवाड़ी नहीं होता। पर कालेजके हमारे एक मित्रने एक बार बहुत आग्रहपूर्वक हमसे कहाथा कि उन्होंने अपनी बिल्लीको हँसते हुए देखा था *। इस बातके माननेके अनेक सबल कारण हैं कि बन्दरकी जातिके प्राणियोंको स्मित और हास्यका अनुभव होता है। गुदगुदाए जाने पर अथवा सिकी पहचाने हुए आदमीको बहुत दिनों बाद देखने पर उन्हें हँसी आती है। यदि बन्दरोंको खिझानेके लिये या किसी और प्रकार उनसे दिल्लगी या ठट्ठा किया जाय तो वे उसे नापसन्द करते हैं; इससे यह बात स्पष्ट

---

* कुछ दिन हुए, मराठीके करमणूक नामक पत्रमें एक हाथीके हँसनेका हाल छपा था।

हो जाती है कि वे समझते हैं कि हास्यास्पद होना किसे कहते हैं। इन सब विवेचनोंके सम्बन्धमें इस बातका अवश्य ध्यान रखना चहिए कि निम्न-श्रेणीके इन जीवोंको जो हँसी आती है वह बहुधा स्मितसे मिलती जुलती नहीं होती। अर्थात् ये प्राणी इस प्रकार खिलखिला कर हँसना नहीं जानते जिसमें किसी प्रकारका शब्द हो, ध्वनिके स्वरूप तक पहुँचनेवाला हास्य केवल मनुष्यों में ही पाया जाता है। निम्न-श्रेणीके प्राणियोंकी हँसीमें स्मितके कारण उत्पन्न होनेवाली मुखविकृति नहीं होती।

(६१) इस सम्बन्धमें एक और मजेदार बात विचार करने योग्य है; वह यह कि स्वयं मनुष्यमें सबसे पहले हास्य किस अवस्थामें उत्पन्न होता है, और अनेक अँगरेज प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओंने इस का निश्चय प्रयोग द्वारा किया है। उन्होंने नए जनमे हुए बालकों को एक अलग कोठरीमें रख कर यह निश्चय किया है कि उनमें स्मित, हास्य, विनोद आदि बातोंका सबसे पहले कब और किस प्रकार प्रादुर्भाव होता है और इस सम्बन्धमें उन लोगोंने दिनचर्या भी लिख रखी है। विचारपूर्वक निरीक्षण करके उन लोगोंने यह निश्चय किया है कि हास्य-क्रिया मनुष्यमें आनुवंशिक है और केवल अनुकरणके कारण उसमें नहीं आई है। दूध पीकर पेट भरने पर छोटे बालकों को एक प्रकारका स्वाभाविक और सहज आनन्द होता है और उसी समय उनके चेहरे पर एक प्रकारके स्मितका अविर्भाव होता है। अर्थात् मनुष्यमें यह क्रिया जन्मसे बहुतही थोड़े समय पीछे होने लगती है। इसमें ऐसी मुख-विकृति जिसे पूर्ण रूपसे स्मित नहीं कह सकते, जन्मके उपरान्त दूसरे महीनेके आरम्भमें दिखलाई पड़ती है और उसके थोड़ेही समयके उपरान्त ऐसा हास्य उत्पन्न होता है जिसमें कुछ शब्दभी रहता है। अर्थात् स्मित और हास्य दोनों पहलेपहल सुख-जन्य और आनन्दजन्य होते हैं। इसके उपरान्त उनमें वह हास्य

आता है जो गुदगुदाने आदिके कारण उत्पन्न होता है। प्रायः तीसरे महीने बालक इस योग्य होजाता है कि यदि उसकी ओर देख कर हँसा जाय या उसकी ठुड्ढी पकड़ कर हिलाई जाय तो वह भी हँसने लगे। पेट भरनेके कारण उत्पन्न होनेवाली और गुदगुदानेके कारण उत्पन्न होनेवाली हँसीका सम्बन्ध कुछ प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओंने लेजाकर मनुष्यके बहुतही पुराने समयके पूर्वजों की स्थिति से भिड़ा दिया है। लड़कोंको गुदगुदानेके कारण जो हँसी आती है उसकी आनुवंशिक उत्पत्ति वे यह बतलाते हैं कि आजकल शरीरके जिन भागोंमें गुदगुदानेसे हँसी आती है वही भाग, बहुत प्राचीन कालमें जब कि केवल नाखून और दाँतही मनुष्यके लड़नेके आयुध होते थे, प्रतिपक्षी या शत्रुके प्रहार या आक्रमणके पात्र थे; उसी कालमें मनुष्यको आत्मरक्षाके लिये उन भागोंकी स्नायु आदि सिकोड़ने और छिपानेकी आदत पड़ गई थी; और यही कारण है कि आजकल बहुतही छोटी अवस्था के बालकोंको जब गुदगुदाते हैं तब वे उसी पुरानी पड़ी हुई बानका प्रकाश करते हैं। प्रो० सलीने इससे भी बढ़ कर एक विलक्षण कारण बतलाया है। उनका कहना है कि बहुत प्राचीन कालमें मनुष्यकी उत्क्रान्तिके समय उसके अंगों पर उसका लहू चूसने के लिये बहुतसे जीव चढ़ जातेथे और उन जीवोंको हटानेके लिये उसकी माता उसके शरीर पर ठीक उसी प्रकार हाथ फेरती थी जिस प्रकार आजकल गौएँ भैंसें अपनी जीभसे चाट कर अपने बच्चोंके अंग साफ करती हैं; हाथ फेरने से उन जीवों या कीड़ोंके निकल जानेके कारण उस समय मनुष्यको जो आनन्द होता था सम्भवतः उसी आनन्दका स्मरण आज मनुष्यको बाल्यावस्थामें उसके शरीर पर हाथ फेरनेसे होता है। अस्तु; पहलेपहल मनुष्यमें हास्य-तत्व बहुतही स्थूल रूपमें उत्पन्न हुआ था। पहले शरीर-सुखके कारण और उसके पीछे क्रमशः आनन्द, खेलवाड़,

स्वकृत कृत्रिम आनन्द और ज्ञानोत्पत्तिके कारण असंबद्धता-दर्शन आदि एक एक करके अनेक कारण उत्पन्न होते गए और इसी लिये जो हास्य बहुतही स्थूल रूपमें था वह आगे चल कर अनेक सूक्ष्म रूप धारण करता गया।

(६२) हास्य की मीमांसा करते समय छोटे बालकोंके हास्य का जिस प्रकार ध्यान रखा गया है उसी प्रकार समाजकी बाल्यावस्थामें होनेवाले मनुष्यके हास्यके प्रकारका ध्यान रखा गया है; और उस पर विचार करके अनेक विद्वानोंने सुनी और परिक्षा की हुई जो बातें लिख रखी हैं, इस स्थान पर उन परभी थोड़ासा विचार करना आवश्यक है। जान पड़ता है कि छोटे बालकों और समाजकी बाल्यावस्थाके मनुष्योंकी अनेक बातें एक दूसरेसे मिलती जुलती हैं। किसी चीजको देख कर बिना किसी विशेष कारण के ही हँस पड़ना अथवा हास्यकी प्रयोजकता अथवा अप्रयोजकताका मनमें बिना विचार किएही हँसपड़ना और अपने उस हँसनेके लिये किसी प्रकारकी लज्जा या विलक्षणता न मालूम होना उसी समय हो सकता है जब मनुष्य बहुत अधिक भोला और सीधा हो; और यह बात बालकों में भी देखी जाती है और बड़ी आयुके उन लोगोंमें भी पाई जाती है जो आजकलके सुधरे और सभ्य लोगोंकी दृष्टिमें पूर्णताको प्राप्त नहीं हुए हैं। छोटे बालक जिस प्रकार किसी नए पराए आदमी को देखकर लजाते हैं और उसके सामने उनकी असली मनोवृत्ति प्रकट नहीं होती उसी प्रकार सम्भव है कि जंगली लोग आजकल के सुधरे हुए लोगोंके सामने अपनी वास्तविक मनोवृत्तियाँ प्रकट न करते हों। इसी लिये कुछ लोगोंने यहभी समझ लिया है कि जंगली लोगोंमें विनोदशीलता कम होगी और उन्हें हास्य अधिक प्रिय न होगा। जंगली आदमियोंको बिलकुल ही आदमी

न समझनेवाले और अपनी सभ्यता का बहुत गर्व करनेवाले लोगोंमें परस्पर बहुत अधिक वाद-विवाद होचुका है। लेकिन बात यह है कि जंगलियों के बीचमें सभ्य लोग बहुतही थोड़े समय तक रहते हैं और उस थोड़े समय में वे जो कुछ देखते हैं वही औरों को भी बतलाते हैं; और इसी लिये ऐसे लोगों के वर्णनसे अधिक व्यापक सिद्धान्त नहीं निकाला जासकता। लेकिन जिन मिशनरियों को बहुत दिनों तक जंगलियों के साथ और उनसे सम्बन्ध रखनेका अवसर मिला है, उनके वर्णन और लेख आदिके आधार पर यह बात निःसंकोच होकर कही जासकती है कि जंगलियों के चेहरोंसे ही साधारणतः इस बातका पता लग जाता है कि वे उदास और दुखी रहनेवाले प्राणी नहीं हैं बल्कि उनमें बहुत कुछ विनोदशीलता होती है। वे प्रायः अपने मनके भाव और वृत्तियाँ स्वच्छन्दतापूर्वक प्रकट करते हैं। अंतःकरणमें आए हुए हास्यके उद्वेगको दबा रखना शिक्षित और सुसंस्कृत लोगोंके लिये जितना सहज और स्वाभाविक है उतना जंगली लोगोंके लिये नहीं है। आस्ट्रेलिया आदि देशों के आदिम निवासी जंगलियोंके सम्बन्धमें प्रवासियोंने जो कुछ लिख रखा है उससे जान पड़ता है कि अगर उन्हें किसी बात में अधिक आनन्द आता है तो वे उठाकर हँसने और इधर उधर उछलने कूदने लगते हैं, चूतड़ पीटते और तालियाँ बजाते हैं और यहाँ तक कि कभी कभी बहुत अधिक हँसनेके कारण उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती है। अफ्रिकाके काफिर या हब्शी भी जंगलियोंका बहुत अच्छा नमूना हैं। परन्तु मिस किंग्स्ले नामकी एक प्रवासिनी स्त्रीने लिखा है कि जब तक आधुनिक सभ्य राष्ट्रोंके लोगोंसे उनका सम्बन्ध नहीं होता और जब तक वे आधी जंगली और आधी सभ्य स्थिति तक नहीं पहुँचते तब तक वे बहुत ही

विनोदप्रिय रहते हैं और उनके साथ रहनेमें बहुत आनन्द मिलता है। जंगली लोगोंको जब हँसी आती है तब उनके हाथ और पैर एकही साथ हिलने डोलने लगते हैं और उनकी आँख पानीसे भर जाती हैं। एक प्रकारकी लज्जाशीलता, किसी प्रकारका उपद्रव करना, एक दूसरेको कष्ट देना, मुँह चिढ़ाना या किसी प्रकारकी कुचेष्टा करना, व्यंग करना, खिझाना और विलक्षण नाम रखना आदि उनके हास्यके विभाव हैं; और इसी लिये देखा गया है कि सुशिक्षित लोगोंकी अपेक्षा जंगली हँसते हँसते अधिक लोटते हैं। कोई नई और अपरिचित चीज देख कर उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है। बोर्नियो द्वीपमें एक बार एक सज्जन पहले पहल "पियानो" बाजा लेकर गए थे। जब वह उसे बजाने लगे तो उसकी सुरवाली पत्तियोंको ऊपर नीचे होते देख वहाँके लोगों को इतना आश्चर्य्य हुआ कि वे उन्हीं पत्तियोंके ऊपर नीचे होनेके साथ साथ उछलने कूदने और जोर से हँसने लगे। एक इंजीनियरके सन्दूकमें एक छोटा सा कम्पास था। उसने जब अमेरिकन इण्डियनों को वह कम्पास दिखलाकर कहा कि उसकी सहायतासे तरह तरहकी सुन्दर आकृतियाँ बनाई जा सकती हैं तो उन लोगोंने उसपर जरा भी विश्वास न किया और इंजीनियरके कथनको बिलकुल असंबद्ध प्रलाप समझकर वे इतना हँसे कि जल्दी उनकी हँसी न रुकती थी। सुशिक्षित यूरोपियनके कला-कौशल सम्बन्धी अनेक कार्य्योंकी नवीनता देखकर उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है*। अपनेसे भिन्न जातियोंके लोगोंकी रीत-रसम

---

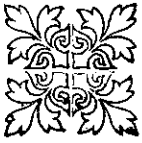
* एक बार अफ्रिका का एक जंगली सरदार किसी प्रकार इंगलैण्ड पहुँच गया। वहाँ वह मैंचेस्टर में कपड़ा बुननेका एक कारखाना देखने गया। जिस समय मनेजर उसे घूम घूम कर मशीनें दिखला रहा था उस समय

आदि देखकर भी उन्हें बड़ा कुतूहल होता है और हँसी आती है। विशेषतः युरोपियनोंकी चालढाल देखकर तो उनका विनोद चरम सीमाको पहुँच जाता है, यहाँ तक कि जो जंगली मुँह धोना नहीं जानते वे गोरे लोगोंको मुँह धोते देखकर हँसते हँसते लोट जाते हैं। कुछ युरोपियनोंको अपनी हजामत आपही बनाते देखकर दक्षिण अफ्रिकाके जंगलियोंके एक सरदारको बड़ा कुतूहल हुआ और उसने एक युरोपियनसे अपनी हजामत बना देनेकी प्रार्थना की। युरोपियनने भी प्रार्थना स्वीकार करके उसकी हजामत आरम्भ की। जब तक उस सरदारकी हजामत बन न गई तब तक उसके गाँवके सब लोग उन दोनोंको चारों तरफ से घेर कर बैठे रहे और जब हजामत खतम हो गई तो सब लोग बहुत जोर से ठठाकर हँसने लगे। गोरे लोगों का गाना सुन कर उन्हें ऐसी दिल्लगी मालूम होती है कि मानों वे किसी पशु का गाना सुन रहे हैं; स्त्रियों और पुरुषोंको हाथ में हाथ देकर और पैर पर पैर रखकर नाचते देख उन्हें और भी अधिक कुतूहल और आनन्द होता है। प्रायः लोगों का यह नियम होता है कि स्वयं उनकी भाषा चाहे कितनीही बेढंगी और भद्दी क्यों न हो, पर जब वे दूसरोंको वह भाषा बोलनेमें असमर्थ देखते हैं तो उन्हें बहुत हँसी आती है; और जंगली लोगोंमें भी इस नियमका यथेष्ट पालन होता है। गोरे लोगोंकी

उसके कोट का कोना किसी मशीन के चक्कर में फँस गया और उस चक्कर के जोर से मनेजर भी उसके साथ दो तीन बार घूम गया और अंत में जमीन पर गिर पड़ा। जंगली और उसके साथी इस क्रिया को तमाशा समझ कर उससे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने दुभाषिए से कई बार उस मनेजर से कहलाया कि वह फिर एक बार उस चक्कर के साथ घूम कर पहले की तरह उन्हें तमाशा दिखलाए! — अनुवादक।

ईश्वरोपासनाकी प्रणाली देखकर भी जंगलियोंको बहुत हँसी आती है। एक बार एक पादरीने अपने जंगली विद्यार्थियोंको यह समझानेका प्रयत्न किया कि आत्मा अविनाशी है। उसका कथन सुनकर यह बात उसके विद्यार्थियोंकी समझमें ही न आई कि कोई ऐसा मनुष्य या शरीर भी हो सकता है जिसके चलने के लिये न तो पैर हों और न खाने के लिये मुंह, और इसी बात पर वे घंटों खिलखिलाकर हंसते रहे। सुशिक्षितों और सभ्यों में जिस प्रकार स्त्रियाँ और पुरुष अपने अपने वर्णके गुण और विशेषताएं लेकर एक दूसरेकी दिल्लगी उड़ाते हैं उसी प्रकार जंगली भी दिल्लगी उड़ाते हुए देखे जाते हैं। जंगली लोग प्रायः रातके समय अपने रहनेके स्थान पर एकत्र होकर हँसी दिल्लगी और बातचीत करते हुए सारी रात बिता देते हैं। जंगली लोग दूसरों की नकल भी बहुत अच्छी तरह करते हैं; और अगर उनके साथ दिल्लगी कीजाय और वे इसे समझ लें तो उन्हें उतनाही क्रोध आता है जितना दूसरों की नकल उतारने में उन्हें आनन्द और उत्साह होता है। मजेदार बातें करने, श्लेष शब्द कहने और उत्तरके बदलेमें यथेष्ट प्रत्युत्तर देकर अपने बदले दूसरेको हास्यास्पद बनानेमें भी जंगली लोग कुछ न कुछ प्रवीण हुआ करते हैं। आष्ट्रेलिया और तस्मनियाके निवासी पूरे पूरे जंगलियोंमें भी अनेक प्रकारके विनोदपूर्ण खेल हुआ करते हैं। स्यामोआ प्रान्त की प्रत्येक जातिके सरदारके दरबार में एक दरबारी मसखरा रहता है। ग्रीनलैण्ड की एस्किमो जातिके जंगली लोगोंमें जिस समय किसी मुकद्दमे का फैसला होने लगता है उस समय वादी और प्रतिवादी परस्पर एक दूसरे की निन्दा करने के लिये अनेक प्रकार की अश्लील कविताएं पढ़ते हैं और उनमेंसे जो श्रोताओं और उपस्थित लोगों को सबसे अधिक हँसा और उनका मनो-

रंजन कर सकता है, उसीके हकमें फैसला होता है। तात्पर्य्य यह कि इस प्रकार की हँसी-दिल्लगी करनेवाले, जिसमें बहुत अधिक बुद्धिमत्ता की आवश्यकता न हो, प्रायः सभी जंगलियों में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें विचारपूर्ण और बुद्धिमत्तायुक्त विनोद करनेवालों की भी कमी नहीं होती। मिस किंग्सले नामकी प्रवासिनी स्त्री ने अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है कि जंगलियों से जो काम बीसियों तरह के युक्तिवाद करके और यहाँ तक कि उनके सिरपर बन्दूक का कुन्दा रखकर या उनकी छाती पर गोली का निशाना लगाकर भी नहीं कराया जा सकता वही काम अवसर पड़ने पर उनके साथ थोड़ा सा विनोद करके और उन्हें हँसाके बहुत ही सहज में कराया जा सकता है। तात्पर्य्य यह कि विनोदके विचारसे देखा जाय तो जंगली लोग अज्ञान बालकोंकी तरह बुद्धिहीन प्राणियों और सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत लोगोंके मध्यकी स्थितिमें मिलते हैं।



छठा भाग ।

हास्य का इन्द्रिय-विज्ञान की दृष्टि से विचार ।

(६३) संस्कृत-साहित्य के शास्त्रकारों ने हास्य के जो भिन्न प्रकार माने हैं और उनके पहचानने के लिए जो लक्षण बतलाए हैं उनका वर्णन पहले किया जा चुका है । पर उस वर्णनसे अधिक से अधिक इतना ही पता चलता है कि यदि हृदयमें हास्य रसका उत्कर्ष कम हो तो उसका परिणाम शरीर की अमुक अमुक क्रियाओं के द्वारा दिखाई पड़ता है और यदि उसका उत्कर्ष अधिक हो तो उसके परिणाममें होनेवाले लक्षण अमुक अमुक हैं । और इसी लिये दिखलाई पड़नेवाली भिन्न भिन्न क्रियाओंसे निश्चय किया जा सकता है कि किस प्रसंग का हास्य किस प्रकारके अन्तर्गत है । परन्तु शारीरिक और दृश्य परिणामों की भाँति हास्यका अन्तस्थ परिणाम भी होता है । पर वह परिणाम दृश्य नहीं होता, इसलिये साहित्य-शास्त्रकारोंके वर्गीकरणोंमें उसका समावेश नहीं हुआ है । इसी प्रकार संस्कृत-साहित्यके ग्रंथोंमें हास्यवाली शारीरिक क्रियाके मूल कारण और उसकी उत्पत्ति सम्बन्धी भी कहीं कोई विचार दिखाई नहीं पड़ता । इंन्द्रिय-विज्ञान-शास्त्रसे यदि देखा जाय तो जान पड़ेगा कि शरीर और मन दोनों ही अलग अलग और अपनी अपनी रीतिसे हास्यके कारण होते हैं । 'मन' मनुष्य की छठी इंद्रिय है । इसलिये पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाले हास्यके साथ साथ मनसे उत्पन्न होनेवाले हास्यका भी विचार इन्द्रिय-विज्ञान की दृष्टिसे किया जाना चाहिए ।

(६४) अब पहले यह देखना चाहिए कि शरीर की इन्द्रियों के कारण हास्य किस प्रकार उत्पन्न होता है । शरीरसे उत्पन्न होनेवाला सबसे सहज और सबके ध्यानमें तुरन्त आनेवाला वह हास्य है जो शरीरके किसी विशेषित भाग को स्पर्श करनेसे उत्पन्न होता है । इसी विशिष्ट स्पर्शके परिणाम को गुदगुदी कहते हैं । पैरों के तलुए, बगल या कोख आदि कोमल अंगों पर ही गुदगुदी होती है; और स्पर्श करनेवाला पदार्थ जितना ही कोमल और गुलगुला हो गुदगुदी उतनी ही अधिक होती है । गुदगुदी छोटे बालकों से ले कर वृद्धों तक सभी को अर्थात् सभी अवस्थावालों को होती है । यह हास्य मनुष्य की इच्छा पर अवलम्बित नहीं होता; और यदि मनुष्यके मन की स्थिति हास्यसे एकदम प्रतिकूल दुःख, राग आदि तीव्र मनो विकारों से प्रभावित न हो तो शायद ही कोई ऐसा मनुष्य मिलेगा जिसे गुदगुदाने से हँसी न आवे । यह नहीं कहा जा सकता कि गुदगुदी सदा और सब को सुखात्मक ही जान पड़ती है । हम लोग देखते हैं कि गुदगुदानेसे एक प्रकार का सुख होता है और छोटे बालक विनोदके लिए प्रायः एक दूसरे को गुदगुदाया करते हैं और उनकी स्वयं इच्छा होती है कि कोई उन्हें गुदगुदावे । परन्तु इन्द्रिय-विज्ञान-शास्त्रके जानकारों का मत है कि यदि गुदगुदाने से होनेवाली संवेदना का सूक्ष्म रूप से पृथक्करण किया जाय तो उससे शरीर को सुख भी होता है और दुःख भी । यदि शरीरका कोई अंग गुदगुदाया जाय तो वहाँ की नसों से दो प्रकार की क्रियाएं होती हैं । उनमें से एक क्रिया को संरक्षक और दूसरी क्रिया को आनन्ददर्शक कह सकते हैं । गुदगुदी होनेके समय हाथ पैर और विशेषतः गुदगुदाया जानेवाला अंग सिकोड़ना और गुदगुदानेवाले पदार्थ या हाथ को झटकार देना आदि संरक्षक क्रियाके अन्तर्गत हैं । और आन-

न्ददर्शक क्रियाके उदाहरण मनमें आनन्द होनेके कारण खिल-खिलाकर हँसना, आँखोंमें आनन्द-अश्रु आ जाना और अंगों का इधर उधर हिलना आदि हैं। गुदगुदी का सबसे पहला और निश्चित परिणाम यह होता है कि शरीरमें एक प्रकारका अपूर्व अनुभव या साक्षात्कार होता जान पड़ता है। यह बात सिद्ध करनेके लिए केवल इतना कहना यथेष्ट है कि स्वयं अपने आपको नहीं गुदगुदाया जा सकता; अथवा किसी दूसरे के हाथ की उँगलियाँ या पर सरीखा मुलायम पदार्थ अपने हाथ में पकड़ कर अपने आप को गुदगुदी नहीं की जा सकती। स्पर्श का प्रकार जितना ही अधिक अननुभूत और अनपेक्षित हो गुदगुदानेवाले को दूर हटा देने की उतनी ही अधिक इच्छा होती है। और यदि गुदगुदीसे उत्पन्न होनेवाली हँसी का कोई ठीक कारण हो सकता है तो वह स्पर्श की अतर्कितता या आकस्मिकता ही है। पर यदि यह अतर्कितता किसी निश्चित सीमासे आगे बढ़ जाय—यदि अपने आपको इस बात का दृढ़ विश्वास हो जाय कि स्पर्श करनेवाली वस्तु से अवश्य ही हमारा कोई अनिष्ट होगा अथवा ऐसे अनिष्ट का जरा सा भय या संशय भी उत्पन्न हो—तो गुदगुदी का परिणाम स्वाभाविक से भिन्न होगा। अर्थात् हमें हँसी नहीं आवेगी और डर लगेगा। गुदगुदी से होनेवाला संवेदन यद्यपि बहुधा सुखात्मक ही होता है, तथापि हँसनेके समय उस गुदगुदानेवाले को झटकार देने की भी इच्छा होती है। सभी अवस्थाओंके लोगों को गुदगुदी के कारण हँसनेके लिये मनकी किसी विशेष प्रकारकी स्थितिमें पहुँचना पड़ता है। मान लीजिए कि यदि हाथकी उँगलियोंसे गुदगुदानेके बदले हाथमें साँप या बिच्छू पकड़ कर उसके किसी अंगसे गुदगुदाने का प्रयत्न करें—और यदि वास्तवमें उस बिच्छू का डंक या साँप का जहरीला दाँत भी तोड़ डाला

गया हो—तो भी जब तक गुदगुदाए जानेवाले को यह बात पूरी तरह मालूम न हो जायगी तब तक वह हँसनेके बदले रोए और चिल्लाएगा ही। और तब यदि उसे इस बात का विश्वास दिला दिया जाय कि बिच्छू का डंक या साँप का मुँह बिलकुल निरुपद्रवी और किसी प्रकार का अनिष्ट न करनेवाला है तो दूसरी बार वह भयसे न रोए या चिल्लाएगा। परन्तु पूरी तरह सन्देह न मिटने के कारण फिर भी वह दो एक बार उस पदार्थ के स्पर्श से घबराएगा और थोड़ा बहुत चिल्लाएगा। और जब उसे दस पाँच बार गुदगुदी की जायगी तो उसके मन का सब सन्देह मिट जायगा और तब उसके मनकी स्थिति गुदगुदीके कारण हँसनेके योग्य हो जायगी। गुदगुदीके सिवा एक और प्रकारसे भी हँसी उत्पन्न की जा सकती है। रसायन-शास्त्रके वेत्ताओंने हास्य-वायु नामक एक और वायु का पता लगाया है। वह वायु नाइट्रोजन और आक्सिजन के मिश्रण से बनती है और उसका एक मजेदार गुण यह है कि जब वह श्वास के साथ नाक के रास्ते दिमाग तक पहुँचती है तो मनुष्य आपसे आप हँसने लगता है। यहाँ तक कि बिलकुल अनजानमें बल्कि अपनी इच्छा के विरुद्ध भी वह हँसने लगता है। इस प्रकारके हास्य को ज्ञानतन्तु-जन्य अथवा मज्जातन्तु-जन्य हास्य कहते हैं। गुदगुदी से उत्पन्न होनेवाली हँसी का स्नायु से सम्बन्ध होता है और अन्तिम वायु-जन्य हास्य का सम्बन्ध तन्तुओं से होता है।

(६५) प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सरने अपने एक ग्रन्थमें हास्यकी मीमांसा इस प्रकारकी है:—"मनुष्य मात्रकी इन्द्रियों और वस्तुओंका जब सन्निकर्ष होता है उस समय यदि मनुष्यका मन जागृत हो तो ज्ञान-संवेदन होता है और यह ज्ञान-संवेदनही एक प्रकारकी शक्ति है। जिस तरह भिन्न

भिन्न प्रकारकी दो बिजलियोंके एक दूसरेके पास आने पर एक प्रकारकी नई शक्ति उत्पन्न होती है और उसका परिणाम चिनगारीकी तरहका प्रकाश और आघात होता है, उसी प्रकार इन्द्रियों और पदार्थोंका सन्निकर्ष होने पर ज्ञान-संवेदन-रूपी शक्ति उत्पन्न होती है। यह संवेदन दो प्रकारके होते हैं। एक सुखात्मक और दूसरा दुःखात्मक। मन और शरीर पर इनमेंसे प्रत्येकका भिन्न भिन्न प्रकारका परिणाम होता है। सृष्टिकर्त्ताने शरीरमें ऐसी योजना कर रखी है कि सारे शरीरमें दो प्रकारके ज्ञान-तन्तु फैले हुए हैं। इनमेंसे एक अन्तर्वाहक है और दूसरा बहिर्वाहक। इन्द्रियों और पदार्थका संयोग होनेके कारण जो ज्ञान-संवेदन होता है वह पहले अन्तर्वाहक तन्तुओंके द्वारा सीधा मस्तिष्क तक जा पहुँचता है और इसके उपरान्त मस्तिष्क जैसी आज्ञा देता है उसके अनुसार वह बहिर्वाहक तन्तुओंकी सहायतासे शरीरके भिन्न भिन्न भागोंमें पहुँचाया जाता है। यह बात नहीं है कि यह आज्ञा होनेका काम जान या समझ बूझ कर ही होता हो। बिना जाने या समझे बूझे जो आज्ञा होती है उसका पालन भी उसी समय हो जाता है। तो भी प्रायः ज्ञान-संवेदनके समय इच्छा-शक्ति पूर्ण रूपसे चैतन्य और विशेष विवरणोंसे परिचित नहीं होती; अथवा यदि वह चैतन्य भी हो तो मस्तिष्ककी दी हुई आज्ञाके पालनका अवसर नहीं मिलता; इसलिये ज्ञान-संवेदन होतेही जो शरीर-क्रिया होती है वह सदा इच्छा-शक्तिकी अनुमतिसेही नहीं होती बल्कि कभी कभी बिना उनकी अनुमतिके भी हो जाती है। उदाहरणके लिये गुदगुदी होने पर तुरन्त अंग सिकोड़ लेना, आँखोंके सामने या बहुत पास अचानक किसी चीजके आजानेके कारण पलकोंका बन्द हो जाना, किसी अंगमें खुजली होतेही नाखूनसे उसे तुरन्त खुजलाना आदि जो

अनेक अनैच्छिक क्रियाएं होती हैं उनका उद्देश्य यद्यपि शरीर-संरक्षणही होता है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वह क्रियाएं मनुष्यकी इच्छाके बिनाही हो जाती हैं। यह तो हुई अनैच्छिक क्रियाओंकी बात ; अब ऐच्छिक क्रियाओंको लीजिये। ऐच्छिक क्रियाएं भी इन्हीं ज्ञान-तन्तुओंकी सहायतासे होती हैं। यदि उँगली कहीं दब जाय तो ज्ञानतन्तुओंसे स्नायु तक आज्ञा पहुँचती है और उँगली पीछेको खिंच आती है ; यह तो हुआ अनैच्छिक क्रियाका उदाहरण। परन्तु क्रिया जब ऐच्छिक होती है—उदाहरण स्वरूप जब मनमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न होता है और उस विकारके कारण जब हम कोई क्रिया करनेमें प्रवृत्त होते हैं—तब वह ज्ञान-तन्तुओंकी सहायतासेही घटित होती है। ज्ञान-संवेदन और मनोविकारसे अनैच्छिक और ऐच्छिक क्रियाएं किस प्रकार उत्पन्न होती हैं इसके उदाहरण हम लोग नित्यप्रति अपने व्यवहारोंमें देखते हैं। शरीरमें ठंढी हवा लगतेही कँपकँपी छिड़ जाती है। सुखकर या आनन्दकी बात सुनतेही मनुष्यकी वृत्ति एक दम बदल जाती है। यदि हमारी इच्छा उसे न पलटने या बदलने देनेकी हो तो वैसा करनेके लिये हमें अपनी तरफसे बहुत जोर लगाना पड़ता है। यदि अचानक कोई घोर निराशाकी बात हो जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि मानों शरीरमें अर्धांग रोगकी तरहका कोई विकार हो गया है। अथवा किसी ऐसे मनुष्यको जिसे अर्धांग-रोगकी तरहका कोई विकार हो, किसी निश्चित सीमासे अधिक आवेश, भय या दुःख अथवा इसी प्रकारका कोई मनोविकार हो तो उसके शरीरके विकृत या निर्जीव अवयवोंमें भी तुरन्त एक प्रकारकी चेतना आ जाती है। इसी प्रकार और भी अनेक अनुभव-सिद्ध बातें हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि ज्ञान-संवेदन और मनोविकार, दोनोंके

कारण एक प्रकारकी क्षोभ-शक्ति उत्पन्न होती है। यह ज्ञान-संवेदन जितनाही अधिक तीक्ष्ण और मनोविकार जितनाही अधिक प्रबल होता है वह क्षोभ-शक्ति भी उतनीही अधिक बलवती होती है। जंजीरसे बँधा हुआ कुत्ता जब दूरसे अपने मालिकको आते हुए देखता है तो पहले वह धीरे धीरे पूँछ हिलाने लगता है। उसकी इस क्रियासे यह प्रकट होता है कि उसके मनमें यही आशा उत्पन्न हुई है कि मेरा मालिक शायद मुझे खोल देनेके लिये आ रहा है। मालिक ज्यों ज्यों उसके पास पहुँचता है त्यों त्यों उसकी पूँछका हिलना बढ़ता जाता है और उसके अंग भी हिलने डोलने लगते हैं। जब मालिकका हाथ उसके गलेके पट्टे तक पहुँचता है तो उसे निश्चय हो जाता है कि अब मालिक मुझे अपने साथ घुमानेके लिये ले चलेगा। उस समय उसका पूँछ हिलाना और उछलना कूदना इतना बढ़ जाता है कि मालिकके लिये उसके गलेकी जंजीर तक खोलना कठिन हो जाता है। बिलकुल खुल जाने पर कुत्तेको जो आनन्द होता है उसके कारण वह खूब उछलने कूदने लगता है और बड़े जोरसे इधर उधर दौड़ने लगता है। घरकी बिल्लीके सम्बन्धमें भी यही बात होती है। घरकी मालिकिन जब उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगती है तब वह अपनी दुम फुला कर कुछ ऐसी क्रिया करती है जिससे प्रकट होता है कि वह सुहलाना उसे बहुत अच्छा मालूम होता है। तोता या मैना भी पिंजड़ेमें इधर उधर उछल कूदकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती है। पर जब प्राणियोंको आनन्दके बदले दुःख होता या क्रोध आता है तो भी उनमें स्नायु-क्षोभ दिखलाई पड़ता है। कुत्ता अपना ऊपरी ओठ सिकोड़ कर दाँत दिखलाने लगता है, घोड़ा अपने कान पीछे कर लेता है, क्रुद्ध सिंह जोरोंसे अपनी पूँछ पटकने लगता है और खिझाई हुई बिल्ली तो एक

विलक्षणही रूप धारण कर लेती है । लड़कोंको जब कोई चीज बहुत पसन्द आती है तब वे उसे जीभसे चाटने लगते हैं। यदि कोई अपरिचित ध्वनि सुनाई पड़ी या बहुत शोख रंग की कोई चीज दिखलाई पड़ी तो दाईकी गोदमें लेटे हुए अबोध शिशु तक खिलखिला कर हँस पड़ते हैं।

नाटकमें दर्शकोंको जब संगीतका कोई पद बहुत अच्छा लगता है तो वे अपनी छड़ियोंसे ताल देने लग जाते हैं। गवैए लोग इकट्ठे हो कर अपने सिर और हाथोंसे अपना आनन्द प्रकट करते हैं और मुँहसे भी "वाह वा, बहुत अच्छे" की झड़ी लगा देते हैं। किसी नाटकके दृश्य या उपन्यासके वर्णनसे हमें यह मालूम हो सकता है कि किसी मनोविकारके प्रबल होने पर मनुष्यका शरीर कहाँ तक चल-विचल हो सकता है। मनोविकारकी प्रबलताके कारण मनुष्य अपने आपसे उच्च स्वरमें बोलने लगता है। अपनी तलवारकी मूठ पर बार बार हाथ रखनेवाला हेमलेट, कल्पना-दृष्टिके सामने खड़े हुए की मुट्ठी पकड़नेके लिये अपने हाथकी मुट्ठी मरोड़नेवाला मैकबेथ, अपने हाथों परका कल्पनामय रक्त धो डालनेके लिये कंडाल के कंडाल खाली कर देनेवाली उसकी स्त्री, चित्रपट पर लिखी हुई शकुन्तला या उर्वशीको देहमयी समझकर उसे सुनानेके लिये प्रेम-वचन कहनेवाला और उसे आलिंगन करनेके लिये बाँहें पसारनेवाला दुष्यन्त अथवा पुरूरवा आदि यद्यपि नाटक के पात्र हैं तथापि संसारमें उनकी ठीक ठीक प्रतिकृत मिलना अधिक कठिन नहीं है।

(६६) जो क्षोभ-शक्ति ऊपर लिखे अनुसार शरीर-क्रिया उत्पन्न करती है उसके व्यय या शान्तिके लिये वह क्रिया ही

खुला मार्ग है। पर वह मार्ग एक ही नहीं है। उसका दूसरा मार्ग यह है कि शरीरकी स्नायु पर यद्यपि उस शक्तिका परिणाम हुआ तो भी शरीरके बाहरी अंगों पर वह दिखलाई नहीं पड़ता। पर हमें इतना ज्ञान अवश्य होता है कि शरीरके भीतरी भागों पर उसका कुछ परिणाम अवश्य हो रहा है। उदाहरणके लिये, यदि सुखात्मक या दुःखात्मक ज्ञान-संवेदन अधिक तीक्ष्ण स्वरूपका हो तो नाड़ी जोरसे चलने लगती है, शरीरमें रक्तका अभिसरण जल्दी जल्दी होने लगता है, जी अधिक घबराने लगता है और यहाँ तक कि पक्वाशय पर भी उसका परिणाम पड़ता है। ज्ञान-संवेदन यदि सुखात्मक हो तो अन्न सदाकी अपेक्षा जल्दी पच जाता है और भूख बढ़ती है और यदि वह दुःखात्मक हो तो परिणाम इसका उलटा होता है। ऐसे अवसरों पर शरीरके भीतरी अंगों और अंतिड़ियों आदिके द्वारा उसका व्यय या उपशम होता है। इस व्यय होने का एक तीसरा मार्ग और है। इस मार्गमें क्षोभसे इन्द्रियाँ क्रियावान् नहीं होतीं; ज्ञान-तन्तुओंके एक भागमें जो क्षोभ उत्पन्न होता है उससे ज्ञान-तन्तु-जालका और कोई भाग सचेतन हो जाता है। उदाहरणार्थ, किसी बात पर शान्तिपूर्वक विचार करनेके समय जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसका व्यय शरीर-क्रिया या अन्तरेन्द्रियोंके चलन-विचलन आदिके द्वारा न होकर एक विचारसे दूसरा विचार उत्पन्न होता है। उस दूसरे विचारसे तीसरा और तीसरेसे चौथा विचार उत्पन्न होता है और यह परम्परा बराबर चली जाती है। इस प्रकार वह क्षोभ-शक्ति उसी परम्परामें विलीन होजाती है और उसकी दशा उस नदी की सी होजाती है जिसमेंसे बहुत सी नहरें निकाल कर सारे देश में उनका पानी फैलाया जाता है और जिसका बचा हुआ पानी घूम फिर कर फिर उसी नदी में आ

मिलता है। अर्थात् इस तीसरे प्रकार में क्षोभ-शक्ति की उत्पत्ति भी विचारोंसे ही होती है और उसका लय भी उसीमें होता है; शरीरके भीतरी या बाहरी भागों पर उसका कभी किसी प्रकार का परिणाम नहीं होता। क्षोभ-शक्तिके व्ययके जो ये तीन मार्ग बतलाए गए हैं, एक ही समय में यह व्यय उन तीनोंमें से एक या अधिक मार्गों द्वारा और कम या अधिक भी होसकता है और यदि एक या अधिक मार्ग बन्द हों तो क्षोभ-शक्तिके व्ययका सारा भार उस बचे हुए मार्ग पर पड़ेगा। उदाहरणार्थ, यदि अत्यन्त मानसिक दुःख हुआ हो और उसे प्रकट करना अयुक्त हो अथवा किसी अन्य कारण से वह प्रकट न किया जा सकता हो तो वह दुःख दुस्सह हो जाता है। जिसकी आँखोंसे आँसू बह सकते हैं उसके दुःखकी अपेक्षा उसका दुःख अधिक दुस्सह होता है जिसकी आँखों से आँसू नहीं बह सकते। जो मनुष्य अपना दुःख प्रकट न करके मन ही मन कुढ़ने लगता है उसका दुःख बढ़ानेके लिये सैकड़ों दुःखपूर्ण बातें उसे याद हो आती हैं और ऐसे ही दूसरे विचार उत्पन्न होने लगते हैं। इसका कारण यह है कि दुःखकी क्रिया को रास्ता न मिलनेके कारण क्षोभ-शक्तिका व्यय विचार-तरंग उत्पन्न करने की ओर होने लगता है। इसके विरुद्ध यदि देखा जाय तो जान पड़ेगा कि मनोविकार उत्पन्न होते ही जब मनुष्य उसके समाधानके लिये क्रिया करनेमें प्रवृत्त होता है तब उसका क्षोभ उतना दुस्सह नहीं होता। दुःखित होनेके समय यदि मनुष्य टहलने या घूमने फिरनेके लिये निकल जाय, अथवा बात-चीतमें लग कर या पुस्तकें पढ़ कर मन बहलाने लगे तो उसका दुःख विस्मृत हो जाता है।

(६७) ऊपर कहा जा चुका है कि यह क्षोभ जब एक

निश्चित सीमासे आगे बढ़ जाता है तब उसका परिणाम शरीर क्रियामें होता है; और हास्य भी इसी प्रकारकी एक क्रिया है। बात केवल इतनी ही है कि वह क्रिया अन्य स्वभाविक क्रियाओंकी तरह सहेतुक नहीं होती, निर्हेतुक होती है। स्पेन्सर के मतानुसार प्रायः किसी मनोविकारका अतिरेक होते ही उसका सबसे पहला परिणाम हास्य ही होना चाहिए। अपने इस कथनके उदाहरणमें उसने यह दिखलाया है कि अत्यन्त आनन्द होने पर सबसे पहले हास्य ही उत्पन्न होता है और अत्यन्त क्रोध आने पर भी सबसे पहले हँसी ही आती है; भेद केवल इतना ही है कि वह हँसी भीषण या विकृत होती है। लज्जा, द्वेष आदि विकार भी परमावधि तक पहुँच जाने पर देखनेमें भले ही भयंकर या बुरे जान पड़ें लेकिन उनसे होनेवाली मुखचर्य्या लक्षणके विचारसे हास्यके ही अन्तर्गत आती है। यहाँ तक कि प्रायः सभी लोग यह बात जानते हैं कि दुःखसे जब मनुष्य पागल होजाता है तब भी उसे हँसी ही आती है। लैंग नामक एक डाक्टरने अपने अनुभवसे लिखा है कि एक बार एक युवक रोगीकी जीभ पर एक फोड़ा हुआ था। उसपर बहुत ही तीव्र और दाहकारक ओषधि लगाई गई थी। उस ओषधिके कारण जब उसकी शारीरिक पीड़ा पराकाष्ठाको पहुँच गई उस समय वह रोगी खूब खिलखिला कर हँसने और ठहाका मारने लगा। शेक्सपियरके टाइटस एण्ड्रोनिकस नामक एक नायकका जिस समय हाथ काटा गया था उस समय वह भी हँसने लगा था। जब उससे हँसनेका कारण पूछा गया तो उसने हँसते ही हँसते कहा—"पूछते क्या हो, रोनेके लिये मेरी आँखोंमें आँसू ही कहाँ बच गया है?" जिस समय क्षोभजन्य क्रिया सहेतुक होती है उस समय होनेवाली अंगविक्षेपात्मक क्रिया चेहरेसे भिन्न शरीरके अन्य भागों या अंगों से होती है।

उदाहरणार्थ, जब क्रोध-रूपी मनोविकार प्रबल होता है उस समय अपने मनमें किसी दूसरेको दण्ड देनेका भाव उदय होता है ; अतः इस हेतुसे जो क्रिया होती है वह बहुधा हाथोंके द्वारा ही होती है। जिस समय भय-रूपी मनोविकार प्रबल होता है उस समय हम छिपने या भागने लगते हैं ; अर्थात् यह क्रिया हमारे आत्म-संरक्षणके प्रयत्नकी द्योतक है। परन्तु मनोविकारोंका क्षाम होने पर भी, चाहे विचारोंकी प्रबलताके कारण मानिए और चाहे किसी और कारणसे मानिए, जिस समय सहेतुक क्रिया करनेकी इच्छा, आवश्यकता या सम्भावना नहीं होती उस समय क्षोभ-शक्तिका व्यय अन्य अवयवोंके द्वारा न हो कर केवल मुँहके द्वारा ही होता है। इसका कारण यह है कि मनुष्यके सारे शरीरमें उसका चेहरा बहुतही नाजुक अंग है और थोड़ेसे क्षोभसे भी उसमें विकार उत्पन्न हो सकता है। जिस प्रकार मनुष्य जहाँ तक हो सकता है अपने चिर-परिचित या नित्यके आने जानेके मार्गसेही चलता है और बिना किसी विशेष कारणके अपना नित्यवाला मार्ग नहीं छोड़ता उसी प्रकार जब तक और कोई विशेष कारण न हो तब तक उसकी क्षोभ-शक्ति चेहरेवाले चिर-परिचित और नित्यके मार्गसे ही शान्त होती है। चेहरे परकी कोई कोई स्नायु बहुतही सूक्ष्म, हलकी और चल होती हैं और ऐसे अवसरों पर उन्हींमें विकार उत्पन्न होता है। और जब उन पर परिणाम पड़ चुकता है तब श्वासोच्छ्वासकी इन्द्रियों, हृदय, पक्काशय और उसके उपरान्त शरीरकी बाहरी इन्द्रियों पर निर्हेतुक क्षोभ-शक्तिका परिणाम होता है। चेहरे पर परिणाम उत्पन्न करनेके उपरान्त जब क्षोभ-शक्तिका कुछ अंश बाकी बच जाता है तब उसका व्यय दूसरी इन्द्रियोंके द्वारा होता है। स्मितसे लेकर अतिहास तक हास्यके जो छः प्रकार इस प्रकरणके आरम्भमें बतलाए गए

चुके हैं वे सब उक्त प्रभेदकेही उदाहरण हैं। अर्थात् यदि उत्पन्न क्षोभ-शक्ति अहेतुक और सौम्य हुई तो केवल स्मितही उत्पन्न होगा। साहित्य-ग्रन्थोंमें कहा गया है कि स्मित केवल श्रेष्ठ लोगोंके योग्य होता है ; इसका कारण या उपपत्ति यही है कि श्रेष्ठ और संस्कृत मनवाले मनुष्यके मनोविकार प्रायः उसके अधिकारमेंही रहते हैं ; वे उच्छृङ्खल या मर्य्यादा-विरुद्ध नहीं होते। अर्थात् यदि ज्ञान-तन्तुका क्षोभ हो तो भी उससे उत्पन्न होनेवाली शक्ति शान्त और धीमी रहती है। इस लिये वह स्मित सरीखी सूक्ष्म और सौम्य क्रिया उत्पन्न करनेके उपरान्त बाकी नहीं बच रहती। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ और विचारी लोगोंमें ज्ञान-तन्तुओंका क्षोभ कोई विशेष कारण आ पड़ने परही होता है, सहसा अकारण नहीं उत्पन्न होता। पर अज्ञ और अविचारी लोगों अथवा छोटे बालकोंमें मनोविकार प्रबल होता है, उन्हें कर्त्तव्यकी अधिक चिन्ता नहीं होती और इसी लिये वे अधिक हँसने और अंग-विक्षेप आदि सभी बातें करनेके विशेष पात्र होते हैं।

(६८) ऊपरके सब विवेचनोंमें हास्यके जिन कारणोंका विचार हुआ है वे कारण 'क्षोभशक्तिकी शान्तिकी आवश्यकताएं' हैं। परन्तु हास्यके और भी अनेक कारण हैं। उनमेंसे एक यह भी है कि जब बहुत समय तक मनुष्य पर एकही प्रकार की मनोवृत्तिका अधिकार रहता है तब वह उससे मुक्त होना चाहता है। हास्यके सब कारण सर्वथा आनन्दमयही होते हैं। पाठशालामें चार पाँच घण्टों तक कड़ी देख-रेखमें और चुपचाप बैठे रहनेके उपरान्त छुट्टी होने पर बालक जब पाठशालासे बाहर निकलते हैं उस समय वे प्रायः हँसते हुएही दिखाई देते हैं। उनके इस हँसनेका कारण यह नहीं होता कि उनका

मनोविकार या ज्ञानतन्तु-क्षोभ निश्चित मर्यादासे बहुत बढ़ गया है ; बल्कि उसका कारण यह है कि बहुत देर तक शान्तिपूर्वक रहनेके कारण उनकी मनोवृत्ति पर जो जोर पड़ा था उससे वे एकदम मुक्त हो गए । घरमें किसी प्रकारका संस्कार आदि अथवा वेद-पाठ होनेके समय जब लोगोंको बहुत देर तक बैठे रहना पड़ता है अथवा श्रावणीके दिन सालमें एकही बार लगातार एक पहर तक आचार्योंके फेरमें पड़ कर धार्मिक कवायद करनी पड़ती है तब उसके श्रद्धालुतासे होनेके कारण शरीर और मन पर जोर कम पड़ता है ; तो भी उसमें अथवा उसके बाद लोगोंको बहुत हँसी आती है । इसका अनुभव बहुतसे लोगोंको हुआ होगा । जिस समय किसी देवमन्दिरमें वेदान्तीका कीर्त्तन या पण्डितकी कथा होती है उस समय बहुतसे लोगोंको स्तब्ध और चुपचाप बैठना पड़ता है । ऐसे कीर्त्तन या कथाके उपरान्त जब सभा समाप्त हो जाती है तब सभासदों या श्रोताओंके चेहरों पर एक प्रकारका हास्य दिखाई पड़ता है । दुःखसे जब मनुष्यका मन बेकाम या जड़ हो जाता है उस समय ठंढी साँस लेनेसे मनुष्यको जिस प्रकार कुछ आराम मिलता है उसी प्रकार ऊपर बतलाए हुए भिन्न भिन्न अवसरों पर आनेवाली हँसीके कारण जोर पड़ी हुई चित्तवृत्तिको आराम मिलता है ; अर्थात् उसकी सहायतासे शरीरमें रक्तका अभिसरण जल्दी जल्दी होने लगता है और मस्तिष्कसे सम्बन्ध रखनेवाले ज्ञान-तन्तुओंके छेद खुल जाते हैं ।

ऊपर लिखी उपपत्ति उसी प्रसंग पर प्रयुक्त होती है जहाँ गम्भीरता अथवा उत्सुकता-वृत्ति मनमें स्वभावतः उत्पन्न नहीं होती बल्कि वह जबरदस्ती खींच तान कर ओढ़ाई जाती

है। परन्तु इससे आगे चलने पर यह जान पड़ेगा कि बहुतसे अवसरों पर शान्ति, गम्भीरता या उत्सुकता आदि शक्तियाँ अपने ऊपर जबरदस्ती लादी नहीं जातीं बल्कि ऐच्छिक होती हैं। ऐसे अवसरों पर भी यदि मनोवृत्तिको एकदम शिथिल कर देनेवाला कोई कारण आ पड़े तो भी हास्य उत्पन्न हो जाता है। मान लीजिए कि हम नाटक देखते देखते उसमें बिलकुल तल्लीन हो गए हैं और दुःख-प्रसंगके कारण सब लोगों पर शोक-पूर्ण शान्ति छाई हुई है। ऐसे अवसर पर यदि नायक अथवा नायिकाको लगातार एकके बाद एक, तीन चार छींकें आ जायँ तो उस समय दर्शकोंमें शायदही कोई ऐसा मनुष्य मिलेगा जिसे हँसी न आए। अथवा मान लीजिए कि रामलीला या नाटक आदिमें, वसिष्ठ ऋषि बड़ीही शान्ति और गम्भीरतासे रामचन्द्रको उपदेश दे रहे हैं; उस समय यदि उनकी नकली दाढ़ी छूट कर जमीन पर गिर पड़े और ऋषिवरका अभिनय करनेवाले पात्रका सपाट चेहरा उसमेंसे निकल पड़े, अथवा ज्योंही कर्णको मारनेके लिये अश्वत्थामा अपनी तलवार म्यानसे बाहर निकालें और उसमेंसे तलवार न निकल कर खाली मूठही निकल पड़े तो सभी दर्शक अवश्य हँस पड़ेंगे। इन सब उदाहरणोंमें पहलेसे चली आई हुई विचार-परम्परामें अचानक अड़चन पड़ जायगी और क्षोभशक्तिका व्यय विचार-परम्परामें न हो सकेगा। क्योंकि वसिष्ठका उपदेश अथवा अश्वत्थामाके क्रोधके वचन सुनते समय मनमें जो उच्च प्रकारके भाव उत्पन्न हुए थे, आँखोंके सामने आया हुआ नया दृश्य उन भावोंकी शक्तिके पूरी तरह लय होनेके योग्य न होगा और लोगोंको हँसी आ जायगी। ऐसे समयमें नए दृश्यके सम्बन्धमें विचार उत्पन्न करनेके बाद जो शक्ति बच रहेगी, जैसा कि पहिले कहा चुका है, उसका

व्यय अवश्यही दूसरे मार्गोंमे करना पड़ेगा अथवा स्वयं होगा ; और उन मार्गोंमें हास्य अथवा हास्यक्रियाही मुख्य मार्ग है। हास्यके अतिरिक्त और क्रियाओंके न होनेका कारण यह है कि ऊपर बतलाए हुए उदाहरणोंमें असंबद्धतादर्शनकी अपेक्षा और कोई प्रबल मनोविकार उस समय मनमें उत्पन्न नहीं होता। यदि और कोई मनोविकार उत्पन्न होता तो हँसी कभी न आती।

साधारणतः असंबद्धता देख कर लोगोंको कुछ आनन्द आता है और वे हँसने लगते हैं ; पर यदि किसी अवसर पर असंबद्धता देख कर आनन्द न हो अथवा बहुतही थोड़ा आनन्द हो तो उस समय मनमें उसकी अपेक्षा और अधिक प्रबल गम्भीर विचारोंका उत्पन्न होना सम्भव है। असंबद्धता-दर्शनके कारण मनोवृत्तिमें प्रतिबंध या अड़चन उत्पन्न होनेसे पहिले मनोवृत्ति जितनी प्रबल थी, प्रतिबंध या अड़चन उत्पन्न होनेके उपरान्त भी मनोवृत्तिको उतनीही प्रबल बनाए रखनेके लिये यदि मनोविकार या कोई कारण उत्पन्न हो जाय तो हास्य उत्पन्न न होगा। सब प्रकारकी असंबद्धताओं या बे-सुरेपनसे देखनेवाले की मनोवृत्ति हलकी नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यदि हमारे सामने कोई मनुष्य किसी दुबले पतले या लूले लंगड़े आदमी के सिर पर जबरदस्ती कोई भारी बोझ लाद दे तो उस समय हमें हँसी नहीं आवेगी बल्कि उलटे क्रोध ही आवेगा। अगर किसी राह चलते भले आदमी की पगड़ी या टोपी में कोई दुष्ट बालक कागज आदि का कोई तुर्रा खोंस दे तो उसे देख कर हँसनेवाले लोग विरले ही होंगे। बहुतसे लोग ऐसेही होंगे जिन्हें उस लड़के के कृत्य पर क्रोध आवेगा। यदि गरमीके दिनों में दोपहरके समय भोजनके लिये कोई मनुष्य अपने सौ मित्रों या ब्राह्मणों को

निमंत्रित करे और उनके आने पर उनके सामने सेर भर भुने हुए दाने रख दे तो उसका यह कृत्य भी असंबद्ध ही होगा; पर उसे देख कर लोगों को हँसी आवेगी या क्रोध चढ़ेगा, इसका अनुमान प्रत्येक मनुष्य अपने आप को उन सौ निमंत्रित मनुष्य मेंसे एक समझ कर भली भांति कर सकता है। सितार देखने में तो सौ रुपए दाम का जान पड़े और उसे कोई छेड़े तो उसमें से कर्ण-कटु स्वर निकलने लगे; ऐसी अवस्था में हँसी आनेके बदले उस सितारके बनाने अथवा खरीदनेवाले की मूर्खता पर खेद ही उत्पन्न होगा। खास कन्नौज से दशहरे के लिये बीस रुपए तोले का बहुत बढ़िया खस का इत्र मँगवाया जाय और ठीक दशहरे-वाले दिन सब लोगोंके आने पर शीशी खोली जाय तो उसमें से मरी का तेल निकले और उसमें भी मरी हुई मक्खी दिखलाई पड़े; ऐसी अवस्था में सब लोग स्वयंही विचार सकते हैं कि असंबद्धता के कारण हँसी आवेगी या किए हुए खर्च, उठाए हुए कष्ट और होती हुई दुर्दशा का ध्यान करके क्रोध आवेगा। एक ओर तो क्रोध से भरा झपटा हुआ शेर आरहा हो और शिकारी दूसरी ओर खड़ा हुआ उसकी तस्वीर उतारने के लिये फोटो का कैमरा ठीक कर रहा हो; ऐसी दशामें असंबद्धता के कारण दर्शक को हँसी नहीं आवेगी बल्कि शिकारी की अलौकिक धीरता और प्रसंग की विकटता का ध्यान करके गम्भीर विचारों से उसका मन पूर्ण हो जायगा। जेवनार का सामान ठीक हो, भोजन परोसा जा चुका हो, सब लोग 'लक्ष्मीनारायण' कह के मुँह में कौर डालाही चाहते हों और इतने में कोई दुष्ट कहीं से एक लाश घसीटता हुआ लाए और खानेवालों के बीच में पटक दे तो उस समय हँसी आवेगी या क्रोध चढ़ेगा? लड़का है, पर अपने बापके अच्छे रास्ते पर चलने से कोसों भागता है; इससे बढ़ कर असंबद्धता वह और क्या दिखलाएगा। तथापि ऐसी

अवस्था देख कर कभी किसी को हँसी नहीं आवेगी । हमारी समझ में इतने उदाहरण इस सिद्धांत को प्रमाणित करनेके लिये यथेष्ट होंगे कि असंबद्धता दिखलाई पड़ने से पहले मन में जिस प्रकार के विचार आए हुए होंगे, असंबद्धता-दर्शन के उपरान्त यदि उनसे हलके अथवा कम गम्भीर विचार मनमें उत्पन्न होंगे तभी उस असंबद्धता-दर्शन से हँसी आवेगी ।

(६६) असंबद्धता तीन प्रकार की हो सकती है । एक 'उच्चगा', दूसरी 'समगा' और तीसरी 'नीचगा' । उच्चगा असंबद्धता के दर्शन से विचार पहले से अधिक गम्भीर और उदात्त होते हैं; और इसी लिये दर्शक को हँसी नहीं आती । यदि असंबद्धता समगा हो, अर्थात् परस्पर विरुद्ध होनेवाली बातें समान स्वरूप की हों, तो मन की स्थितिमें परिवर्त्तन उत्पन्न करने का कोई कारण नहीं हो सकता; अर्थात् जिस प्रकार के विचार असंबद्धता-दर्शन से पहले थे वैसेही उसके बाद भी रहेंगे, मन की स्थिति में किसी प्रकार का अन्तर न दिखलाई पड़ेगा । जब केवल नीचगा असंबद्धता होगी अर्थात् किसी बड़ी बात की छोटी बात के साथ असंबद्धता अथवा विरोध होगा, तो केवल उसी समय हँसी आवेगी ।

(७०) हास्य की उत्पत्ति के विषय में और भी बहुत से ग्रंथकारों ने अपनी अपनी समझ के अनुसार बहुत कुछ कहा है । इस स्थान पर थोड़ेमें उनका भी वर्णन किया जाता है । उन उपपत्तियों में से जो उपपत्ति मुख्य है उसे हम 'लाघवी' कहेंगे । इस उपपत्ति के पुरस्कर्त्ता के मतसे विषयगत लघुता का दर्शनही रसकी दृष्टि से हास्य का कारण होता है । वस्तु मात्र में जो जो वस्तुएं लघु या हीन होंगी, अथवा अनेक वस्तुओं का कोई

विवक्षित सम्बन्ध दिखलाई पड़ने पर जो लघुता या हीनता जान पड़ेगी, मनुष्य स्वभावतः प्रायः उन्हीं को देखने या देखते रहने की इच्छा करता है; और उसी स्वभाव के अनुसार लघुता या हीनता देख कर उसके मन में आनन्ददायक नई वृत्ति उत्पन्न होगी। इस उपपत्ति के पुरस्कर्त्ताओं में ग्रीसके प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता अरस्तू, अँगरेज तत्त्ववेत्ता हाब्स और प्रोफेसर बेन का समावेश होता है। अरस्तू ने अपने काव्य (साहित्य) ग्रंथोंमें आजकल के प्रसिद्ध काव्य-प्रकार 'कामेडी' की व्याख्या करते हुए उसे 'मनुष्य स्वभाव का हलकापन वर्णन करने वाला काव्य' बतलाया है। जिस स्थिति या अवस्था में स्वभाव का हलकापन आदि बिलकुल नहीं होता और केवल स्थिति की अनपेक्षितता ही हास्य का कारण होती है, उस स्थिति या हास्य-विभाव का जिक्र उसने नहीं किया है। यदि उसकी व्याख्या के अनुसार देखा जाय तो हास्यकारक बातों का समावेश "कुरूप" बातों के अन्तर्गत होता है। हाब्स का कथन है कि हम लोगों को जो हँसी आती है उसका मुख्य कारण यह है कि हमारे मन में पराए की अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता का ध्यान आता है और एक प्रकार का क्षणिक अहंकार उत्पन्न होता है। इस उपपत्ति में लघुता-दर्शन अथवा हीनता-दर्शन हास्य का प्रत्यक्ष कारण नहीं है बल्कि उसका प्रत्यक्ष कारण विषयी-गत अहंकार-प्रतीति है। यह श्रेष्ठता पराए से तुलना की अपेक्षा नहीं करती। यद्यपि अपने मनमें दूसरों की अपेक्षा अपने आपको श्रेष्ठ समझने के कारण भी बहुधा हमें हँसी आती है तथापि बहुतसे अवसरों पर हमें यह समझ कर भी हँसी आती है कि हम पहले की अपेक्षा इस समय श्रेष्ठ हैं अथवा हम जितनी हीनता तक पहुँच सकते थे उतनी हीनता तक न पहुँच कर श्रेष्ठ ही बने रह गए। मूर्ख को देख कर जो हँसी आती है वह इस कारण नहीं कि 'वह' मूर्ख है; बल्कि इस

कारण कि हम उसकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान या विचारी हैं। इसी प्रकार, उदाहरणार्थ, लड़कपन में लोग जो पाजीपन या मूर्खता करते हैं बड़े होने पर उनका स्मरण करके उन लोगों को हँसी आती है। दूसरी प्रकार की इस उपपत्ति और पहली उपपत्ति में भेद केवल इतना ही है कि पहली उपपत्ति में लघुता-दर्शन ही आदि और वही अन्त होता है—अर्थात् उसमें आदिसे अन्त तक मनमें एकही विचार आता या रहता है। लेकिन दूसरी उपपत्तिमें आरम्भ तो लघुता-दर्शनसे होता है और अन्त अहंकार-प्रतीतिसे। पर इस उपपत्तिमें एक बड़ा दोष जान पड़ता है। वह यह कि अचेतन वस्तुओंको हँसी आने योग्य अवस्थामें देख कर—अर्थात् जिस समय अपने मनमें श्रेष्ठता या हीनताके विचारोंके उत्पन्न होनेका कोई कारण या सम्बन्ध नहीं होता—जो हँसी आती है उसकी मीमांसा करनेके लिये अहंकार-प्रतीतिवाला कारण किस प्रकार प्रयुक्त हो सकता है? हमारे सामने यदि मनुष्य जातिका कोई दूसरा प्राणी मूर्खताका कोई व्यवहार या कार्य्य करता हो और लोग उसे देख कर हँसते हों तो उस समय उक्त सिद्धान्तके अनुसार हमें यह मानना पड़ेगा कि हमारे मनमें उस मूर्खकी अपेक्षा श्रेष्ठ होनेका भाव उत्पन्न होता है और हम यह समझते हैं कि और लोग हम पर उस प्रकार नहीं हँस सकते। परन्तु मान लीजिए कि हमने किसी पेड़ पर बहुतही विलक्षण आकृतिका कोई फल लगा हुआ देखा अथवा किसी पेड़की तस्वीर उतार कर देखी तो संयोगवश उसकी आकृति किसी बन्दरकी सी दिखाई पड़ी तो उसे देख कर हमें जो हँसी आवेगी उस हँसीका कारण आत्म-श्रेष्ठता-प्रतीतिको किस प्रकार मान सकते हैं? प्रोफेसर अलेकजेण्डर बेनने पहलेकी इस उपपत्तिकी थोड़ी सी मरम्मत की है। उनके मतसे केवल लघुता-दर्शन ही हास्यका प्रत्यक्ष कारण है। उसमें आवश्यकता

केवल इसी बातकी है कि वह लघुतादर्शन ऐसी परिस्थितमें न हो जिसमें गम्भीर अथवा आवेश-युक्त विचारोंके उत्पन्न होने की सम्भावना हो ।

तत्त्ववेत्ता काण्टने 'हास्य' की व्याख्यामें कहा है कि जब बहुत देरसे उठी हुई कोई अपेक्षा-युक्त कल्पना अचानक अस्तित्व-हीन होजाती है उस समय उत्पन्न होनेवाली मनोविकार-जन्य क्रिया ही हास्य है* । परन्तु काण्टकी यह उपपत्ति सभी स्थानों पर समान रूपसे प्रयुक्त होने योग्य नहीं जान पड़ती । हाब्स और बेनने जिस प्रकार सारा जोर विषयीगत विकार पर दिया है उसी प्रकार काण्टने भी सारा जोर विषय-गत विकार पर दिया है । पर यदि सारा भार केवल विषय-गत असंबद्धता पर ही छोड़ दिया जाय तो भी काम नहीं चलता ; अर्थात् यह कारण या व्याख्या हास्यके सब प्रकारके विभागों पर समान रूपसे प्रयुक्त नहीं हो सकती । यदि काण्टके मतके अनुसार देखा जाय तो कोई कल्पना पहले अपेक्षाके रूपमें उत्पन्न होकर नष्ट होती है ; अर्थात् मनुष्यको हँसानेके लिये अपेक्षित कल्पना का निरास अनपेक्षित रीतिसे होना चाहिए । लेकिन व्यवहारमें देखा जाय तो जान पड़ेगा कि जब जब हम हँसते हैं तब तब केवल उक्त घटना ही नहीं होती । जिस समय हम कोई विनोद-पूर्ण लेख पहलेपहले पढ़कर हँसते हैं इस समय काण्टके कथनानुसार अपेक्षाका निरास होता है और इसी लिये हम हँसते हैं। परन्तु वही लेख जब कोई दूसरा आदमी पढ़ने लगता

---

* An affection arising from the sudden transformation of a strained expectation into nothing:—

है तो उस समय हमें किसी प्रकारकी अपेक्षा नहीं रह जाती, क्योंकि उस लेखकी सब बातें हमें पहलेसे ही मालूम होचुकी हैं। इस लिये यदि उस कल्पनाका निरास हो तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह निरास अनपेक्षित रूपसे होता है। लेकिन इतना होने पर भी हम दुबारा उस लेखको सुनकर हँसते ही हैं। उस समय हास्यके सब विभागोंमें केवल यही कारण समान रूपसे प्रयुक्त नहीं हो सकता कि मनमें जमी हुई किसी अपेक्षाका अनपेक्षित रीतिसे निरास होनेसे हँसी आती है।

जर्मन-तत्त्ववेत्ता शोपेनहोरने भी हास्यकी एक उपपत्ति बतलाई है। वह कहता है कि अपनी कल्पना और उससे संबद्ध वस्तुमें जब किसी प्रकारकी असमानता होती है तब हास्य उत्पन्न होता है। काण्टके अपेक्षा-निरासवाले सिद्धान्तसे यह ध्वनि निकलती है कि हँसनेमें हँसनेवाले मनुष्यकी किसी प्रकारकी विडंबना या दुर्दशा होती है पर शोपेनहोरकी उपपत्तिमें इस प्रकारकी विडंबना या दुर्दशाका कोई भाव नहीं है। उसके कथनानुसार हम जो कुछ देखते या अनुभव करते हैं वह यदि हमारी कल्पनाके अनुकूल न होकर उससे भिन्न हो तो उसके कारण हमें हँसी आती है। अर्थात् यह बात नहीं है कि जो घटना हम देखें उसकी कल्पना हमारे मनमें अनुभव करनेसे पहले अवश्य ही हो। कभी कभी तो इस कल्पनाका होना अनुभवके उपरान्त भी सम्भव है। काण्टकी उपपत्तिमें तो विशिष्ट और पहलेसे की हुई कल्पनाका निरास ही सब कुछ है; पर शोपेनहोरकी उपपत्तिमें कल्पना विशिष्ट न भी हो अथवा अनुभव के उपरान्त हो तो भी काम चल सकता है। परन्तु शोपेनहोरकी उपपत्ति भी सब विभागोंमें समान रूपसे

नहीं घट सकती। क्योंकि मनुष्यमात्र पर कोई छोटी मोटी आपत्ति आने अथवा इसी प्रकारके किसी और विभागमें अपेक्षा-निरास आदिकी कोई सम्भावना नहीं होती। वही बात हास्यके उस विभागके विषयमें भी समझना चाहिए जिसके अन्तर्गत समझका फेर आदि कारण आते हैं।

इस प्रकार यह बात समझमें आ जायगी कि यह दोनों ही उपपत्तियाँ सब विभागोंमें समान रूपसे नहीं घट सकतीं। अर्थात् यह बात निश्चित होजाती है कि केवल लघुताप्रदर्शन अथवा असंबद्धता-दर्शन ही हास्य-रसका कारण नहीं है, इसके और भी कारण हैं। अंगरेज टीकाकार हेजलिट और तत्त्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सरने दोनों कारणोंका एकमें समावेश करके यह विरोध नष्ट करने का प्रयत्न किया है। पहले यह कहा जा चुका है कि स्पेन्सरने नीचगा असंबद्धताको हास्यका मुख्य कारण माना है। 'नीचगा असंबद्धता' में असंबद्धता और लघुतादर्शन दोनोंका ही समावेश होता है। अर्थात् स्पेन्सरके मतके अनुसार हँसी आनेका कारण लघुता-दर्शन भी है और असंबद्धता-प्रतीति भी; फिर इनमेंसे हर एकके प्रमाण चाहे कितने ही अधिक वा कम क्यों न हों।

तत्त्ववेत्ता मि० सलीके अनुसार हास्यका जितना कारण लघुता-दर्शन अथवा असंबद्धतादर्शन है उसकी अपेक्षा मनुष्यका वह खेलवाड़ी स्वभाव अधिक और प्रत्यक्ष कारण माना जा सकता है जिसके सम्बन्धसे छोटे बच्चे और सयाने आदमी समान हो जाते हैं। परन्तु हास्य पर उसने जो पुस्तक लिखी है उसमें इस बातको स्वयं स्वीकार किया है कि यह उपपत्ति हास्यके सब विभागोंमें समान रूपसे नहीं घट सकती। तात्पर्य

यह कि यदि इस प्रकार देखा जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि हास्यके कारणोंकी अब तक एक भी ऐसी उपपत्ति निकली है जो सर्व्वसम्मत अथवा सर्वव्यापक हो; और साथही इसमें भी सन्देह है कि भविष्यमें कोई ऐसी उपपत्ति निकलेगी या नहीं। यद्यपि शारीरिक-क्रियाकी दृष्टिसे हास्य-क्रिया एक ही प्रकारकी जान पड़ती है तथापि यह बात स्वाभाविकही है कि रसकी दृष्टि देखते हुए हेतुभेद या विभाव-भेदसे उसकी उपपत्ति भिन्न होगी * ।



---

* The impressions of the laughable cannot be reduced to one or two principles. Our laughter at times is of various tones. It gathers up into itself a number of primitive tendencies; it represents the products of widely removed stages of intellectual and moral evolution. This is virtually admitted by all who recognise the intellectual and the moral principles; for our laughter at seeing dignity unfrocked is presumably of more ancient origin than the laughter of the mind which discoursers on the ludicrous are for the most part thinking of. Our arguments

सातवाँ भाग।

हास्य-रसका व्यावहारिक उपयोग।

(७१) हम यह बात अच्छी तरह समझते हैं कि यहाँ तक हास्यकी जो कुछ विवेचना हुई है और अब तक हमारे लिखनेका जो रुख रहा है उससे हम पर एक जबरदस्त आक्षेप किया जा सकता है। वह आक्षेप यह है कि हमने हास्य रसको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दिया है। आक्षेप करनेवाले समझ या कह सकते हैं कि हमने हास्य-रसको खूब बढ़ा चढ़ा कर रस-वर्गमें राजपद पर बैठा दिया है और ऐसा होने पर प्रौढ़

---

take us further, namely, to the conclusion that the effect of the laughable even of what is given by the philosophers, as a sample of the ludicrous, is a highly complex feeling containing something of the child's joyous surprise at the new and unheard of; something too of the child's gay responsiveness to a play challenge; often something also of the glorious sense of expansion after compression which gives the larger mobility to freshly freed limbs of young animals and children.

Sully, para 153.

और गम्भीर विचारों अथवा रसपूर्ण सुन्दर काव्योंको मानों हमने इस संसारमें अनाथ और निराधार सा कर दिया है। कोई कहेगा कि हास्य-रसको उचित से अधिक महत्त्व दे कर हम दिल्लगीबाजीका एक नया बाजार खोल कर बैठे हुए तमाशा देखते हैं और इस बाजारके खुलनेके कारण सभ्यता और गम्भीरता आदिको सदाके लिये छुट्टी मिल जायगी। कोई पूछेगा—"क्यों साहब, क्या हमें यह जीवन केवल हँसी दिल्लगीमेंही बितानेके लिये मिला है जो हम सदा मसखरापनही करते रहा करें? जहाँ दिल्लगीबाजीकी आदत पड़ी वहाँ आवेश, गम्भीरता भक्ति आदि सद्गुणोंको ठिकाने लगाही समझिए। संसारका काम प्रायः इन्हीं गुणोंकी सहायतासे चलता है और जब इन्हींका नाश हो जायगा तो फिर संसारका काम किस प्रकार चलेगा?" यह आक्षेप विचार करने योग्य है; अतः हम शान्तिपूर्वक उस पर विचार करते हैं।

(७२) नीतिका वचन है—"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्"। इस नीति वाक्यको कौन न मानेगा? यह बात बहुत ठीक है कि यदि सच बोलना पड़े तो वह इस प्रकार बोला जाय जिसमें वह दूसरोंको रुचे और पसन्द आए। परन्तु यदि बात सत्य हो और इस प्रकार कही जाय जिसमें औरोंको रुचे और यदि वह ऊपरसे हास्योत्पादक भी की जासके तो क्या उसका आनन्द मिसरी पड़े हुए दूधके समान न हो जायगा? परन्तु यह तत्त्व या सिद्धान्त जितना युक्तिपूर्ण जान पड़ता है, व्यवहार करनेके लिये वह उतना सहज नहीं मालूम होता। क्योंकि संसारमें हास्यके विरुद्ध युक्ति-वाद और आचरण करनेवाले बहुतसे लोग दिखलाई पड़ते हैं। सबसे पहले, यदि हम साधारणतः सूक्ष्म-दृष्टिसे भिन्न भिन्न लोगोंके

मुखोंकी आकृतियाँ देखें तो हम समझ जायँगे कि बहुतोंकी आकृतियाँ हास्यरसके एक दम प्रतिकूल होती हैं। ऐसे लोगोंके केवल चेहरे देख कर ही बिना किसी सोच विचारके यह कहा जा सकता है कि इन लोगोंका हँसनेके साथ सदा बारहवाँ बृहस्पति रहता है। लोग प्रायः आपसमें कहा करते हैं—"क्यों भाई, रोते क्यों हो?" उत्तर होता है—"क्या करें, सूरत ही ऐसी है।" सम्भव है कि किसी समय हृदयकी अंतरंग स्थिति और ऊपरी मुखचर्य्याका मेल न मिले। तथापि साधारण नियम यही है कि मनुष्यके स्वभाव और उसके हृदयके भीतरी विचार-भांडारकी कुंजी उसकी मुखचर्य्यामें ही मिलेगी। और इस कुंजीकी सहायतासे संसारमें प्रायः आधे ऐसे आदमी पहचान कर अलग किए जा सकेंगे जो मुहर्रमी और हास्यके शत्रु हों। ऐसी मुखचर्य्यावाले लोगोंके सम्बन्धमें एक बड़ी मजेदार बात यह है कि यदि कभी पत्थर पर दूब जमनेकी तरह उनके रूखे मनमें हास्य-रसकी थोड़ी बहुत उत्पत्ति हुई भी तो उनके चेहरे पर मोहकता या सौम्यता न आवेगी, बल्कि उलटे वह अधिक डरावना और कठोर मालूम होने लगेगा। ऐसे लोगोंसे काम पड़ना भी बड़ा भारी दुर्भाग्य ही है। दूसरे बहुतसे लोग ऐसे भी होते हैं जिनके चेहरेसे सौम्यता और आनन्द-प्रियता बरसती है और जिन्हें देखते ही तुरन्त यह नहीं कहा जा सकता कि वे केवल विनोदके शत्रु ही हैं। तो भी वास्तवमें उन्हें हास्य-विनोद पसन्द नहीं आता। वे स्वयं तो प्रायः कभी हास्य-विनोदके झगड़ेमें पड़तेही नहीं, और यदि भूले भटके कहीं हास्यकी थोड़ी बहुत ध्वनि भी उनके कानों तक जा पहुँची तो वे उसी तरह काँवरे-बावरे हो जाते हैं जिस तरह मेघका गरजना सुन कर छोटे छोटे बालक। उनके अन्तःकरणके सौजन्य-क्षीरमें हँसी-दिल्लगी मानों नमककी डलीका

सा काम करती है। चार मित्रोंको हँसते बोलते देख कर उन्हें ऐसा डर लगता है कि मानों पंच महापातक आकर उनके सिर पर सवार हो गये हों। ऐसे लोग यही समझते हैं कि संसार भरकी सारी चतुराई, सारी विचारशीलता और सारा तत्त्वज्ञान बड़ी दृढ़तासे उसी गम्भीर और निश्चल चेहरेके साथ जड़ दिया गया है जिस पर विनोद आदिके कारण किसी प्रकारकी रेखा या बलका पड़ना नितान्त असम्भव है। इसी कारण यदि कहीं कभी सुखकी वृद्धि करनेवाला और उत्तम प्रकारका हास्य या विनोद उनके सामने हुआ तो भी शिकार पर छोड़े हुए कुत्तेके कानोंकी तरह उनकी मनोवृत्ति अपनी निश्चलता पर अटल रहती है। और बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जिन्हें हास्य-रस बिलकुल करुण-रस ही जान पड़ता है। इस तीसरे प्रकारके लोगोंमें एक विशेष गुण होता है जो ऊपर बतलाए हुए दो प्रकारके लोगोंमें नहीं होता। वह गुण सहृदयता है। तीसरे वर्गके लोगोंके अन्तःकरण प्रेमपूर्ण होते हैं परन्तु उनका सारा प्रेम केवल करुण रसके ही अर्पित रहता है। ऐसी समझके लोगोंके लिये यह सारा संसार दुःखमय होता है। उनकी समझमें करुणात्मक वस्तु या घटना ही संसारके अनुकूल है; आनन्दस्थानोंको वे अपवादके अन्तर्गत मानते हैं। उनका सिद्धान्त होता है कि हँसी दिल्लगी करना मानों सृष्टिके नियमोंके विरुद्ध आचरण करना है। काम धन्धेमें हँसी दिल्लगीको जगह मिलही नहीं सकती और काम धन्धा करना ही जीवनका मुख्य हेतु है। इसी लिये उनका मत होता है कि हँसी दिल्लगी केवल लड़कों बच्चों को करनी चाहिए। जी खोल कर हँसनेका काम तो वे प्रायः आधे पागलों अथवा पूरे पागलोंका ही सौंप देते हैं। उन्हें मानों ऐसा जान पड़ता है कि दिल्लगी और अक्ल दोनों सगी बहने हैं और एक ही समयमें उन दोनोंसे विवाहसम्बन्ध रखना

एक दम अनीतिपूर्ण है। बुद्धिमत्ताको एक बार स्वीकार करके उस पर अपनी अनन्य प्रीति बनाए रखनेके लिए वे विनोदको मानों अपने रास्तेसे हाँक कर अलग कर देते हैं। और इसी लिये जब वे विनोद पर प्रीति करनेवाले किसी आदमीको देखते हैं तो अच्छी तरहसे समझ लेते हैं कि बुद्धिमत्ताके इसका कोई मतलब ही नहीं है। आप जो चाहें सो करें, पर विनोद उनके किये कभी नहीं होगा। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो यह युक्ति लड़ाते हैं कि हास्यकी उत्पत्ति असंबद्धताके कारण होती है और असंबद्धता तिरस्कार करने योग्य दोष है, इस लिये विनोदको उत्तेजना देना मानों बुद्धि-विकलताको उत्तेजना देना है।

(७३) विनोद-शत्रुओंके ऊपर जो भिन्न भिन्न इतने प्रकार बतलाए गए हैं, यह बात मुक्तकण्ठसे स्वीकार करनी पड़ेगी कि उनमें से कुछ प्रकारके विनोदशत्रुओंका इलाज करनेमें हम नितान्त असमर्थ हैं। क्योंकि जिस पर स्वयं ब्रह्मदेव कुपित हों उसकी सहायता मनुष्य कहाँ से कर सकता है? जिसे ईश्वरने नाक ही न दी हो उस पर यदि किसीको दया आ जाय तो भी वह उसे सुवासका सुख किस प्रकार दिला सकता है? जिस प्रकार सुगन्धकी इन्द्रिय नाक है उसी प्रकार विनोदकी इन्द्रिय मन है। जिस मनुष्यकी विनोद ग्रहण करनेवाली शक्ति नष्ट हो गई हो यदि उसके सामने स्वयं विनोद ही मूर्त्तिमान हो कर आ खड़ा हो तो उसका फल क्या होगा? लेकिन जिन लोगोंकी विनोद ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय भली चंगी और मौजूद हो पर जिन्हें केवल युक्तियोंके कारण ही विनोद दोषमय जान पड़ता हो उनकी अवश्य थोड़ी बहुत सहायता की जासकती है। ऊपर जिस असंबद्धताका जिक्र किया गया है वह सदा केवल

दोषमयी ही नहीं होती । "असंबद्धता" शब्दमें साधारणतः थोड़ीसी गौणता अवश्य मानी जाती है । परन्तु सब प्रकारके अपवादास्पद विकारोंको मनमें आनेसे रोक कर केवल मनकी प्रसन्नता से असंबद्धताका व्यवहार किया जा सकता है । केवल इतनाही नहीं, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि इस प्रकारका व्यवहार करना बुद्धिके एक भाग या प्रकारका आवश्यक और आनन्ददायक कार्य्य है । संसारकी सभी चीजोंसे संबद्धता या संवादिता ढूँढ़ निकालना बुद्धिके लिये जितना भूषण-प्रद है, उसी प्रकार उचित स्थानोंमें उपयुक्त असंबद्धता या असंवादिता ढूँढ़ निकालना भी बुद्धि-शक्तिके लिये उतना ही शोभास्पद है । संवादिता जिस प्रकार वस्तुका गुण है, बुद्धिका नहीं, उसी प्रकार 'विसंवादिता' यदि बहुत हो तो वस्तुका ही दोष माना जायगा, बुद्धिका नहीं । जिस स्थान पर इस विसंवादिता अथवा असंबद्धताके होते हुए भी उसका ज्ञान प्राप्त करनेमें किसी प्रकारका शारीरिक अथवा मानसिक दुःख नहीं होता, अथवा किसी मनुष्यके प्रति घृणा नहीं उत्पन्न होती, किंवा अपनी नीति-बुद्धिको किसी प्रकारका धक्का नहीं पहुँचता उस स्थान पर असंबद्धताका ज्ञान मनुष्यके लिये अवश्य ही बहुत आनन्ददायक होना चाहिए । इसमें सन्देह नहीं कि स्याही स्वच्छ नहीं होती; पर जिस प्रकार लिखनेके लिये उसका उपयोग करनेमें कोई दोष वा हानि नहीं है उसी प्रकार असंबद्धताके दूषित होने पर भी उसका व्यवहार दोषास्पद नहीं हो सकता । तात्पर्य यह कि असंबद्धताके गुणों और दोषोंका विचार केवल योजनाके हेतु अथवा योजनासे होनेवाले परिणाम पर ध्यान रख कर किया जाना चाहिए ।

(७४) यह बात बहुत ठीक है कि हरदमकी हँसी दिल्लगी या चुहलबाजीकी आदत पड़ना अच्छा नहीं है । क्योंकि उसके कारण

स्वभावमें एकदेशीयता आती है और एकदेशीयता का आना दोष है। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि वह एकदेशीयता जिन जिन गुणोंसे सम्बन्ध रखती है उन्हींका नाश भी करती है; इस दृष्टिसे विनोद चाहे गुण ही हो तथापि उसके साथ भी इसी नियमका पालन होगा। यह बात निर्विवाद है कि मनुष्यमें गम्भीरता और आवेशकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। यदि विनोद अधिक किया जाय तो इन दोनों गुणोंको बहुत कुछ धक्का पहुँचनेकी सम्भावना है। यदि हर एक चीजको देख कर हम केवल उसकी हँसी ही उड़ाने लग जायँगे तो सारा काम ही चौपट हो जायगा। विनोद हो और चाहे न हो, हमारा प्रधान लक्ष्य संसारकी उदात्त और शुद्ध बातोंकी ओर होना चाहिए। यदि हँसी दिल्लगीको हम अनुचित न समझते हों तो भी संसारमें बहुत सी ऐसी बातें हैं जो अनुचित समझी जाने योग्य हैं; और उन्हीं बातों से मनमें सदा घृणा करनी चाहिए। संसारमें बहुत सी ऐसी असंबद्धताएं भी हैं जिन्हें देख कर हमें कदापि हँसी न आवेगी, उलटे दुःख ही होगा। अर्थात् उन सब बातोंमें विनोदको जगह नहीं मिलती; वहाँ आवेश या गम्भीरता आदि गुणों का ही आश्रय लेना पड़ता है। जिन लोगोंको हम बहुत विनोदप्रिय समझते हैं उनमें से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें संसारकी सभी बातें तुच्छ जान पड़ती हैं, वे सब बातोंकी दिल्लगी ही उड़ाया करते हैं, उन्हें किसी बातमें कोई सार नहीं जान पड़ता *। ऐसे लोगोंको संसारमें कोई चीज पवित्र

* ऐसे ही एक दिल्लगीबाजकी बातों से बहुत चिढ़ कर एक बार एक धार्मिक पण्डितने कहा था कि मरने पर दिल्लगीबाजोंकी बड़ी दुर्दशा होगी। दिल्लगीबाजने पूछा—क्यों महाराज, क्या होगा? पंडितजीने कहा—वे सब उलटे करके टाँग दिये जायँगे। दिल्लगीबाजने कहा—चलो, यह भी एक दिल्लगी होगी। —अनुवादक

अथवा वन्दना करने योग्य नहीं जान पड़ती। पर साथ ही ऐसे लोगोंके किये हुए विनोदको हम विनोद भी नहीं कह सकते। ऐसे लोगोंसे उसी प्रकार दूर रहनेका प्रयत्न करना चाहिए जिस प्रकार किसी रोगसे बचनेका यत्न होता है। जिस प्रकार किसी दरबारमें मसखरेके हँसी ठट्ठा करते रहने पर भी राजा साहब अपनी गद्दी पर और दरबारी लोग अदब-कायदेसे अपनी अपनी जगहों पर बैठे रहते हैं उसी प्रकार विनोदके होते हुए भी मनुष्यके मानसिक दरबारमें श्रद्धता, गम्भीरता, विचार-शीलता अथवा सत्यप्रियतामेंसे किसी एक न एक सद्गुणका मनःप्रवृत्ति पर पूर्ण रूपसे अधिकार होना चाहिए। नित्य-प्रति संसारमें बहुतसे ऐसे विनोद प्रिय देखे जाते हैं जो बहुधा मूर्ख, दुष्ट या उपद्रवी आदि होते हैं। ऐसे लोगोंको देख कर यह जान पड़ता है कि यदि केवल विनोद करनेके कारणही ऊपरके अनेक दुर्गुणोंका हम पर अधिकार हो सकता हो तो इससे अच्छा यही है कि हम लोग विनोदसे दूर रहें। क्योंकि विनोद चाहे कितनाही प्रिय और इष्ट क्यों न हो तो भी उसके मूल्य या महत्त्वकी एक निर्दिष्ट सीमा होनी चाहिए। पर ऊपरके सब कारणोंके वास्ते जितना बट्टा काटना उचित हो उतना काटनेके उपरान्त भी विनोदका कुछ न कुछ मूल्य बच रहता है। क्योंकि ऐसी बातें बहुतही कम हैं जिनमें हमें किसी प्रकारका विनोद न करना चाहिए और ऐसी बातें बहुत हैं जिनमें विनोदके लिये बहुत कुछ जगह है। इस सम्बन्धमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि विनोदकी गणमैत्री बहुतसी बातोंसे मिलती है; ऐसी बातें बहुत ही कम हैं जिनसे उसका मेल नहीं मिलता। यदि सद्गुणोंके साथ विनोदका मेल होगा तो मानों दूधमें मिसरी मा पड़ जायगी अथवा उनकी जोड़ीमें वैसीही उज्ज्वलता और देदीप्यता आ जायगी जैसी स्फटिक पर सूर्य्यकी किरणोंके

पड़नेसे होती है। बुद्धिमान्, तत्त्ववेत्ता, शूरवीर, सहृदय, विद्वान्, व्यवहार-चतुर, पण्डित, सद्-असद्-विवेकी अथवा इसी प्रकारके लोगोंके लिये तो हमारे हृदयमें आदर होता ही है; पर यदि उन लोगोंमेंसे प्रत्येकमें सौभाग्यसे विनोद-प्रियता भी हो तो हमारी आदर-बुद्धिमें एक प्रकारके मधुर प्रेमका भी छींटा पड़ जाता है। केवल आदर-बुद्धिके कारण जो लोग हमें पराए या दूरतः सेव्य जान पड़ते हैं वेही उक्त प्रेमके उत्पन्न होनेके कारण हमारे साथ एक-दिल हो जाते हैं और उनके सद्गुण आकर हममें संक्रमित होते हैं।

(७५) हास्य और विनोदके उपयोगका दो प्रकारसे विचार किया जा सकता है। एक तो सामाजिक दृष्टिसे और दूसरे व्यक्तिगत दृष्टिसे। इनमेंसे सामाजिक दृष्टिसे विचार करनेके समय हमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि समाज कोई अलग व्यक्ति नहीं है और न उसका कोई पृथक् मनही है। परन्तु जिस प्रकार व्यक्तिकी बुद्धि और नैतिक कल्पनाओंकी वृद्धि होती है उसी प्रकार सारे समाजकी बुद्धि और नैतिक कल्पनाओंकी भी वृद्धि होती है। जिन बातोंकी सहायता से इन दोनों विषयोंमें समाज अधिक सुशिक्षित हो सकता हो वही बातें समाजके लिये लाभदायक होंगी। कई बातोंमें व्यक्तिकी अपेक्षा समाजको विनोदकी आवश्यकता कदाचित् अधिक है। एक व्यक्तिके मनका झुकाव बहुधा किसी विशिष्ट बातकी ओर ही होता है, उसकी शिक्षा प्रायः एकांगी ही होती है और उसके विचार भी प्रायः एक ही ओर हुआ करते हैं। पर समाजकी वह बात नहीं है; समाजके प्रायः सभी अंगोंकी वृद्धि होनेकी आवश्यकता हुआ करती है; और इसी लिये उसे अनेक अंगोंकी शिक्षाकी भी आवश्यकता हुआ करती है। इस

अनेकांगी शिक्षाकी प्राप्तिमें समाजकी हास्य-विनोद-प्रियताका बहुत बड़ा उपयोग होता है। यदि कोई मनुष्य कोई बढ़िया सुभाषित अकेला ही पढ़े अथवा सुन ले तो उससे होनेवाला लाभ बहुत ही परिमित होता है; पर यदि उसी सुभाषितको दस आदमी एक साथ मिल कर पढ़ें या सुनें तो उसका लाभ अपेक्षाकृत कहीं अधिक होगा। एक व्यक्तिको तो उससे केवल शिक्षा ही मिलती है; पर यदि दस आदमी एक साथ मिल कर उस सुभाषितका आनन्द लें तो उन्हें अलग अलग शिक्षा तो मिलेगी ही; साथमें उनका मेल होगा और उनमें संगशक्ति उत्पन्न होगी। इस लिये किसी सुभाषितके गुण दोष आदिका विचार करनेके समय इस बातका ध्यान कम रखना चाहिए कि व्यक्तिके मन पर उसका क्या परिणाम होगा और समाजके मन पर होनेवाले उसके प्रभाव या परिणामका अधिक ध्यान रखना चाहिए। हास्य-विनोद-शीलता एक सामाजिक गुण है और उसका प्रसार एक दूसरेके सम्पर्कके कारण बढ़ता है। सामाजिक हास्य-विनोदसे सामाजिक सुस्वभाव, सामाजिक सद्गुण और समाज-हित-दृष्टिकी वृद्धि होती है।

(७६) अब हास्य-विनोदसे होनेवाले उस लाभको लीजिए जो व्यक्तिको होता है। सबसे पहले यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि आरोग्यता-शास्त्रकी दृष्टिसे हास्य-क्रियाका शरीर पर बहुत ही लाभदायक परिणाम होता है। शरीर और स्वास्थ्य पर हास्यका बहुत अच्छा परिणाम पड़ता है। जिस मनुष्यको वैद्यक आदिका कुछ भी ज्ञान न हो वह भी कह सकता है कि हँसनेसे शरीरकी सब नसें खूब खुल जाती हैं। जिस समय मनुष्य नहीं हँसता उस समय श्वासोच्छ्वासकी क्रिया सीधी और शान्त रीतिसे होती है; पर हँसनेके समय उसमें एक दम

व्यत्यय हो उठता है। परन्तु उस व्यत्ययका परिणाम श्वासोच्छ्वासकी इन्द्रियों और शरीरके रक्त-प्रवाह पर अच्छा ही होता है। हास्यके कारण वक्ष-कपाट पर एक एक करके कई आघात होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक आघातके समय रक्तवाहिनी नलियोंमेंका रक्त हृदय तक पहुँचनेसे रुकता है। यही कारण है कि बहुत देर तक हँसनेसे मनुष्यका चेहरा किसी अंशमें तमतमा उठता है। पर हास्य-क्रियाके बीच बीचमें जल्दी जल्दी जो श्वासोच्छ्वास होता है उसकी सहायतासे फेफड़ेमें हवा पहुँचती है जो उसे फुला देती है। इसका परिणाम यह होता है कि रक्त-वाहिनी नलियोंमेंका रक्त कलेजेकी ओर बढ़ता है। कलेजेकी ओर जोरसे रक्त जाने और रुकनेकी क्रियाओंके बराबर एक एक करके होते रहनेसे रक्तमें प्राण-वायुका अधिक संचार होता है और उसके प्रवाहकी गति भी बढ़ जाती है। ये सब तो प्रत्यक्ष परिणाम होते हैं; इनके अतिरिक्त और अनेक अप्रत्यक्ष परिणाम भी हो सकते हैं। जब मनुष्य खुल कर हँसता है तब उसके मस्तक पर रक्तका दबाव कम पड़ता है। बालकके नाराज हो जाने पर लोग मुँह चिढ़ा कर, उसकी नकल उतारके अथवा और किसी प्रकार उसे हँसाते हैं; इसका कारण यही है कि हँसी आनेके साथ ही दिमाग पर खूनका जोर कम हो जाता है और मनोवृत्ति बदल जाती है। ये सब फल हँसी आनेके साथ ही होते हैं; इसके अतिरिक्त मनुष्यके सारे शरीर या स्वास्थ्य पर हँसनेके जो परिणाम होते हैं वे इतनी जल्दी नहीं होते। परन्तु उनके होनेमें कभी किसीको तनिक भी शंका नहीं हो सकती। अँगरेजीमें एक कहावत है - Laugh and grow fat (हँसनेसे आदमी मोटा होता है।) इससे जान पड़ता है कि हँसीके सम्बन्धमें अँगरेजोंका क्या विचार है *

* (1) When man smiles and much more when

ग्रीक तत्त्ववेत्ता अरस्तूके समय से ले कर आज तक जितने इन्द्रिय-विज्ञान-विशारद हुए हैं, वे सब यही कहते चले आये हैं कि हँसने से फेफड़ोंमें बल आता है और शरीरकी आरोग्यताका हास्य बहुत अच्छा साधन है। जब कभी कहीं रास्तेमें बहुत भीड़ लग जाती है तो पुलिस डंडा ले कर वहाँ पहुँचती है और "चलो, भीड़ मत लगाओ" कहती हुई सब लोगोंमें खलबली मचा देती है; इसी प्रकार जब मस्तिष्क या मन पर बहुत जोर पड़ता है तो खिलखिला कर हँसनेसे वह जोर जाता रहता है और मनुष्य बहुत हलका हो जाता है। शरीर पर भी हँसनेका ऐसाही परिणाम पड़ता है, क्योंकि बहुधा खुल कर हँसनेसे हाथ पैर आदि अंग भी हिलते डोलते हैं। पर साथ ही यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि "अति सर्वत्र वर्जयेत्" वाली कहावतके अनुसार सम्भव है कि बहुत अधिक हँसनेसे शरीर पर उसका बुरा परिणाम पड़े। औषधकी तरह हास्य भी पथ्य-कर और अपथ्यकर होता है और भिन्न भिन्न प्रमाणोंमें विहित है।

सदा गम्भीर अथवा आवेशयुक्त विचारोंके मनमें उत्पन्न होते रहनेसे मन पर एक प्रकारका जोर पड़ता है। धनुषका जिस समय उपयोग नहीं करना होता उस समय उसकी डोरी खोल कर उस पर पड़ा हुआ जोर कम कर देते हैं। इस प्रकार जब कुछ विशिष्ट अवसरों पर आवेशयुक्त अथवा गम्भीर विचारोंका मन पर जोर पड़े उस समय मनको स्वाभाविक और सरल स्थितिमें लाने और उसका स्थिति-स्थापकतावाला गुण

---

he laughs he adds a fragment to his life. sterne-

(2) Laughter makes good blood. (Italian proverb).

नष्ट न होने देनेके लिये ही ईश्वरने हास्य और विनोदकी रचना कर रखी है। हास्यका यह उपयोग तो केवल अनुकरण रूपसे हुआ। इसके अतिरिक्त उसके कई प्रत्यक्ष उपयोग भी हैं। उनमें से एक उपयोग यह भी है कि उसकी सहायतासे मनुष्य आत्मस्वभावका निरीक्षण कर सकता है। जो शस्त्र हम सदा औरों पर चलाया करते हैं उसी शस्त्रको आत्महितके विचारसे अपने ऊपर चला कर देखनेकी इच्छा मनुष्यमें कभी न कभी अवश्य होती है। विनोद एक केन्द्र पर ठहर कर चारों ओर घूमनेवाला प्रकाश है। जिस प्रकार उसका प्रकाश दूसरे पर पड़ता है उसी प्रकार वह प्रकाश अपने ऊपर पड़ा हुआ देख कर हमें उन बातोंका सहजमें ही बोध हो जाता है जो उसके उजालेमें दिखाई पड़ती हैं। हम लोगोंको प्रायः यह कहते हुए सुनते हैं कि—"हमें आप ही आप हँसी आती है।" इसका तात्पर्य्य स्पष्ट ही है। जिसे सदा औरों पर हँसी आती है उसे अपने ऊपर भी कभी न कभी हँसी आवेगी ही, परन्तु आत्म-निरीक्षण या आत्म-शिक्षणके अतिरिक्त हास्यसे और भी कई लाभ होते हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवनमें छोटी मोटी कठिनाइयों या संकटोंका सामना अवश्य ही करना पड़ता है। उस समय बहुतसे लोग उन कठिनाइयों या संकटोंके बोझसे बेतरह दब जाते हैं। परन्तु हास्यकी सहायतासे हमारे जीवन-क्रममें उन कठिनाइयों या संकटोंके कारण कोई व्यत्यय नहीं होने पाता और उनमेंसे बहुतोंको हम सहजमें ही बिता देते हैं। मान लीजिए कि हम कोई चीज़ किसी सुरक्षित स्थानमें रख कर भूल गए और जब आवश्यकता पड़ने पर घबरा कर उसे इधर उधर ढूँढ़ने लगे तो वह हमें नहीं मिली। ऐसे अवसर पर हमें बहुत कुछ मानसिक कष्ट होनेकी सम्भावना होती है। यदि हम हँस कर उस क्षणको सुखपूर्ण न बना लेंगे तो वह अवश्य ही दुःखपूर्ण

हो जायगा ; और हमें एक व्यर्थके कारणके लिये कुछ समय दुःखमें ही बिताना पड़ेगा । कहीं बाहर जानेके लिये जल्दी जल्दी स्टेशन पर पहुँचे और पहुँचते ही गाड़ी छूट गई । ऐसा प्रसंग सभी लोगोंको कभी न कभी आता ही है । अब गाड़ी छूट जानेके कारण खिन्न हो कर चार आदमियोंके सामने मुँह लटका कर बैठनेवाले एक मुहर्रमीको लीजिए और दूसरे एक ऐसे आदमी को लीजिए जो गाड़ी छूटती हुई देख कर तनिक भी दुःखी नहीं होता और हँसता हुआ कहता है—"वाह, हम तो इतनी दौड़-धूप करके इतनी दूरसे आपके वास्ते यहाँ तक चल कर आए और आपने हमारे लिए एक मिनटकी भी मुरौवत न की । यह कहाँकी भलमनसाहत है ?" अब इन दोनों मनुष्योंकी तुलना कीजिए और बतलाइए कि दोनोंके समान कठिनाई और अड़चनका सामना करने पर भी उनमेंसे सुखी कौन है और दुखी कौन ? मान लीजिये कि आप पैर-गाड़ी पर बैठ कर बड़ी तेजीसे कहीं चले जा रहे हैं ; ऐसे समयमें कोई खेलवाड़ी और पाजी लड़का आपके सामने आ कर खड़ा हो जाता है अथवा अपने स्थानसे नहीं हिलता ; अथवा आप उसे बचानेके लिये बहुत कुछ दाहिने बाएं हटते बढ़ते हैं ; पर जिधर आप मुड़ते हैं उधरही वह आपके सामने आ कर खड़ा हो जाता है । ऐसे अवसर पर प्रायः लोगोंको बहुत त्रास होता है और उन्हें तुरन्त क्रोध आ जाता है । पर जो मनुष्य दुःखी और क्रुद्ध होता है वह इस लड़केको भी चार गालियां देता है और खुद भी चार गालियाँ खा कर निकल जाता है ; और यदि कोई मनुष्य उस लड़केकी तरफसे बोलनेके लिये उठ खड़ा हुआ तो एक झगड़ा मोल ले लेता है । यदि क्रोधमें कुवाच्योंकी मात्रा बढ़ गई तो उसका क्या परिणाम होगा और वह बखेड़ा कहाँ तक बढ़ेगा, सो ईश्वर ही जाने । पर विनोद-प्रिय मनुष्योंको

बात इससे बहुत भिन्न होती है। ऐसे अवसर पर यह बात वह तुरन्त समझ लेगा कि सड़क पर छोटे बालकोंका खेलना निसर्ग-सिद्ध है और आने जानेवालोंके साथ किसी तरहकी दिल्लगी कर बैठना उनके खेलका एक अंग है। ऐसे अवसर पर यदि वह गाड़ी परसे गिर भी पड़ेगा तो भी यदि चोट अधिक न आई तो, वह हँस कर यही कहता हुआ निकल जायगा कि—"गाड़ीको बड़ी चोट आई, चलो इसे डाक्टर साहबके पास ले चलें।" अथवा यदि वह न गिरा और लड़केको किसी प्रकार बचा कर आगे बढ़ गया तो पीछे देख कर वह लड़केसे केवल यही कहता हुआ निकल जायगा—"क्यों, कैसी हुई? आ गए न चकमे में?" ऐसे समय वह स्वयं भी हँसता हुआ निकल जायगा, वह बालक भी हँसने लगेगा और देखनेवाले चार भले आदमी भी हँस पड़ेंगे। घोड़ा-गाड़ीसे उतरते समय अपनी धोती पावदानमें फँस जाने और फलतः जल्दी न उतर सकनेके कारण गाड़ीवानको व्यर्थ गालियाँ देनेवाले और क्रुद्ध हो कर अकाण्ड ताण्डव करनेवाले लोग जिस प्रकार इस संसारमें कम नहीं हैं उसी प्रकार ऐसे लोग भी बहुत हैं जो ऐसे अवसर पर एकाध चोट की बात कह कर अड़चनके उस क्षणको हँस कर बिता देते हैं। अँधेरी रातमें रास्तेमें ठोकर खा कर गिर पड़नेके कारण म्युनिसिपेलटीको गालियाँ दे कर अपने आपको दुःखी भी किया जा सकता है और हँसते हुए यह कह कर अपना रास्ता भी लिया जा सकता है कि—"आजकल हमारे यहाँकी म्युनिसिपल कमेटीने रोशनीका ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया है कि उसकी लालटेन देखनेके लिये घरसे एक लालटेन साथ लानेकी आवश्यकता पड़ती है।" पर इस विषयमें प्रायः किसीको विवाद न करना पड़ेगा कि बुद्धिमान् मनुष्य इन दोनोंमेंसे कौन सी बात स्वीकार करेगा। मान लीजिये कि आप नाटक देखने गए हैं;

आपके सामनेवाली कुरसी पर कोई भला आदमी खूब लंबा चौड़ा पगड़ बांधे बैठा है जिसके कारण आपको नाटक देखनेमें कठिनता होती है। ऐसे अवसर पर आप बिगड़ कर कह सकते हैं कि—"साहब, जब आपको नाटक देखनेके लिये आना हुआ करे तो चक्कीके पाट ऐसा यह पगड़ घर पर रख कर आया कीजिए। समझे कि नहीं? हम आपके पीछेकी कुरसी पर बैठे हैं तो क्या हुआ पर टिकटका दाम हमने भी आपके बराबर ही दिया है। पगड़ी उतार कर रख दीजिए नहीं तो हम मनेजरको बुला कर कहते हैं।" इस पर उसके साथ आपकी कहासुनी होगी, दूसरे दर्शकोंके आनन्दमें विघ्न पड़ेगा और कदाचित पुलिस तक जानेकी नौबत आवेगी। यह तो हुआ एक मार्ग, अब दूसरा मार्ग लीजिए। यदि आप हँसते हुए उस भले आदमीसे पूछेंगे कि—"कहिए साहब, स्टेज पर क्या हो रहा है? जरा हमें भी बतलाते चलिए।" और इस प्रकार व्यंग्यसे उसे पगड़ी वाली अड़चन समझा देंगे अथवा हँस कर कह देंगे—"क्यों साहब, क्या आज आपको गरमी नहीं लगती? जरा पगड़ी उतार डालिए और सिर में हवा लगने दीजिए।" तो वह भी आपकी बात समझ कर हँसता हुआ कह देगा—"क्यों आपको इन सब बातोंकी क्यों चिन्ता हो रही है? क्या आपको पगड़ीके कारण कुछ आड़ पड़ती है?" यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि इन दोनों मार्गोंमेंसे कौन सा मार्ग अच्छा है। कोई भिखमंगा अड़ कर दूकानके आगे बैठ गया है और दिक कर रहा है; उससे बिगड़ कर यह कहना अच्छा है कि—"क्यों जी, सौ दफे तुमसे कहा, तुम मानते नहीं? उठते हो कि गरदनमें हाथ दें?" या यह कहना अच्छा है कि—"अरे देवता बहुत देर हुई, तुम्हें और चार जगह जाना होगा; और लोग हाथमें दक्षिणा लिए हुए तुम्हारा रास्ता देखते होंगे उन्हें क्या आप निराश कर दोगे?" कभी कभी ऐसा

होता है कि ताला खोलने लगिए तो बिगड़ा होने अथवा किसी और कारणसे वह नहीं खुलता। ऐसे अवसर पर घरके लड़कों बच्चों अथवा नौकरों चाकरों पर बिगड़ और खिजला कर गालियोंकी झड़ी लगा देनेवाले यहाँ तक कि ताला बनानेवाले कारखानेवालोंको उल्टी सीधी कह कर अखबारों तकमें उनकी और ऐसे लोग भी होते हैं खबर लेनेकी इच्छा रखनेवाले लोग भी होते हैं, और ऐसे लोग भी होते हैं जो हँस कर कह दें—"अरे खाहं, आजतो आप बेतरह नाराज हैं। आइए आपको थोड़ा तेल पिलाएं।" व्यास जी की कथा खूब जमी हुई है, इतनेमें किसी स्त्रीकी गोदका बालक जोरसे रोने लगा। अब यदि व्यास जी मूर्ख हुए तो उस स्त्रीसे कह बैठेंगे—"तुम अपने लड़केको चुप कराती हो या नहीं? लोग यहाँ कथा सुनने आते हैं या तुम्हारे लड़केका रोना सुनने?" इस प्रकार व्यासजी स्वयं भी दिक होंगे और उस बेचारी स्त्रीको भी दुःखी कर देंगे। पर यदि व्यासजी विनोदप्रिय हुए तो कह देंगे—"छोटे बालकों और राजाओंका क्रोध तथा हठ बराबर ही होता है। उन्हें शान्त करनेमें कितनी कठिनाई होती है, इसका पता गोकुलकी यशोदासे पूछने पर ही लग सकता है।" इसी तरहकी बच्चों सम्बन्धी एकाध और बात कहकर व्यासजी अपने सभी श्रोताओंको थोड़ी देरके लिये अधिक प्रसन्न कर देंगे। इस प्रकारके जितने उदाहरण दिए जायँ सब थोड़े होंगे। इन सबका तात्पर्य्य केवल यही है कि संसारकी छोटी मोटी कठिनाइयों या संकटोंका जितना परिहार विनोदसे होता है उतना क्रोध या दुःख आदिसे नहीं होता। हम नित्य देखते हैं कि बहुतसे काम प्रायः हलके हाथसे ही होजाते हैं; अड़चनों को विनोद-दृष्टिसे देखना भी मानों बहुत हलके हाथसे उनका परिहार करना है। ऐसे अवसर पर साधु या त्यागी लोग

परमार्थ-दृष्टिसे जिस प्रकार अपना समाधान कर लेते हैं उसी प्रकार संसारी लोग विनोदसे अपने मनका शान्तिकर लेते हैं। सुकरात की कर्कशा स्त्रीने जब पहले उसे गालियाँ दी और पीछे उसके सिरपर गरमपानी डाला दिया तो सुकरातने कह दिया—"बिजली चमकने और बादल गरजनेके बाद पानी बरसता ही है।" हम सब लोग चाहे इतने विनोदशील न हों, पर तो भी सभी लोग सांसारिक कठिनाइयों और संकटों के बहुतसे अवसर इसी प्रकार हँसकर टाल सकते हैं। अनेक प्रकारकी परिस्थितियोंका—जिन्हें अँगरेजीमें Circumstances कहते हैं—सामना मनुष्य-मात्रके लिये विषम होता है; क्योंकि उसमें एक ओर तो सर्वशक्तिमान् परिस्थिति होती है और दूसरी ओर अल्पशक्तिमान् मनुष्य; और हम जब तक जीते रहेंगे तब तक यह विषम-समस्या बराबर बनी रहेगी। जब यह बात भली भाँति समझमें आ जायगी तब मनुष्यको विश्वास हो जायगा कि जिस अवसर पर और कोई शक्ति काम नहीं कर सकती उस अवसर पर केवल विनोद-रूपी मायावी शक्तिकी आराधना और सहायतासे ही हम उस विषम-द्वन्द्वमें यश प्राप्त कर सकते हैं।

(७७) साधारणतः प्रत्येक बातका परिणाम दो प्रकारका होता है; एक तो वह जो प्रत्यक्ष होता और पदार्थ-सृष्टि पर पड़ता है और दूसरा वह जो अप्रत्यक्ष होता और अपने मन पर पड़ता है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि इनमेंसे विनोदके द्वारा प्रत्यक्ष परिणाम नष्ट नहीं हो सकता: उसके लिये किसी योग्य और परिहारकारक क्रियाकी आवश्यकता होती है। परन्तु अप्रत्यक्ष अर्थात् मनुष्यके मन पर पड़नेवाला प्रभाव विनोदकी सहायतासे बहुत कुछ कम किया जा सकता है।

यदि विनोद-दृष्टिसे देखा जायगा तो संकट अथवा कठिनाईके प्रत्यक्ष परिणामका भय न रह जायगा ; अथवा कम से कम उसका स्वरूप वास्तविक से कुछ कम जान पड़ेगा। और यदि विनोद-दृष्टिसे उसके अप्रत्यक्ष परिणामको देखा जाय तो परिस्थितिके कई ऐसे अंग हमें मिलेंगे जिनसे हमें बहुत ही थोड़े या ऐसे वैसे संकट दिखाई पड़ेंगे* ।

यह बात स्वयं सिद्ध है कि संकट जितने ही बड़े होंगे, केवल विनोदसे उनका परिहार होना उतना ही कठिन होगा। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उन संकटोंके निवारणके लिये मनुष्य जितने उपाय करता है उनमेंसे विनोदवाले मार्गमें उसे

---

* प्रसिद्ध विद्वान् सली का इस सम्बन्ध में मत है कि—

"In much of this alleviating service of humours the laugh which liberates us from the thraldom of the momentary, is a laugh at ourselves. Indeed, one may safely say that the benefits here alluded to presuppose a habit of reflective self-quizzing. The blessed relief comes from the discernment of the preposterous in the forcing of our claims, of a folly in yielding to the currents of sentiment which diffuse their mists over the realm of reality. The coming of the smile announces a shifting of the point of view, the mal-adjustment which a moment ago seemed to be wholly on the side of the world showing itself now to be on our side as well.–Sully, p.329.

एक प्रकारका सुख मिलता है। यदि किसी दृढ़-निश्चयी और विचारी मनुष्य पर बराबर संकट पड़ते हों और वह धैर्य्यपूर्वक उनका सामना करता हो तो बीच बीचमें यदि उसका मनोविनोद न होगा तो उसे बहुत कुछ मानसिक पीड़ा होगी और वह अधिक समय तक उन संकटोंको न सह सकेगा। यही कारण है कि इतिहासमें जिन बड़े बड़े उद्योगी पुरुषोंके नाम आए हैं, वे प्रायः विनोदप्रिय थे।

(७८) हास्य और विनोद आदि ईश्वरी देन हैं; उनका उपयोग आध्यात्मिक अथवा पारमार्थिक रीतिसे भी किया जासकता है। विनोद किसी घटना या परिस्थिति आदि पर टीका करनेकी एक रीति है। विनोद-प्रिय मनुष्य तात्त्विक विचारोंमें जितना अधिक डूबेगा उसके विनोद अथवा टीका का उतना ही अधिक मूल्य होगा। पहले कहा जा चुका है कि विनोद-शीलताके लिये मनके विकसित होनेकी आवश्यता होती है। लेकिन साधारण सांसारिक मनुष्योंके विनोद और विद्वानों या तत्त्वज्ञोंके विनोदमें बहुत कुछ अन्तर होगा। जीवोंके सम्बन्ध में अपना कल्पना या विचार निश्चित कर लेनेके उपरान्त जीवन-क्रममें विनोदका स्थान निश्चित किया जा सकता है। तत्त्व-ज्ञानसे मनुष्य यह निश्चय कर सकता है कि कौन सी चीज अविनाशी है। परिस्थितिका स्वरूप और उसका वास्तविक अभिप्राय जाननेके लिये विवेककी आवश्यकता होती है और इस काममें हास्य-विनोदसे बहुत सहायता मिल सकती है। तत्त्वज्ञानी मनुष्य जब तत्त्व-ज्ञानके पङ्ख लगाकर ऊपर उड़ता है तब उसके और बाकी बचे हुए समाजके मतमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। और लोगोंकी अपेक्षा वह इस बातको बहुत अच्छी तरह समझ सकता है कि संसार इस समय कैसा है और उसे

वास्तवमें वैसा होना चाहिए। औरोंकी दृष्टिमें जो बातें बड़ी होती हैं, वही उसे छोटी जान पड़ती हैं। जिन बहुत सी छोटी छोटी चीजोंका महत्त्व लोग बहुत ही कम मानते हैं वही उसे अधिक महत्त्व-पूर्ण मालूम होने लगती हैं। जिन्हें लोग पदार्थ समझते हैं वही उसे छाया-मात्र जान पड़ते हैं। तात्पर्य यह कि जनसमूहकी दृष्टि और तत्त्वज्ञकी दृष्टिमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। ऐसी दशामें यही कहना पड़ता है कि इस प्रकारकी विषमता दिखलानेवाला तत्त्वज्ञान हास्य-जनक है; और वह वास्तवमें वैसा ही है भी। पर साथ ही हम यह भी देखते हैं कि अनेक प्रकारके तत्त्वज्ञानोंके पास विनोद फटकने भी नहीं पाता और बहुतसे तत्त्ववेत्ताओंमें विनोद-प्रियता नामको भी नहीं होती। इसका कारण केवल यही है कि उन तत्त्ववेत्ताओं में तत्त्व-ज्ञानी बननेके उपरान्त भी मनुष्य-मात्रके सम्बन्धमें वह प्रेम नहीं रह गया था जितना वास्तवमें होना चाहिए। यही दशा तत्त्वज्ञानके उन प्रकारोंकी भी है। जब तक मन में मनुष्य-जातिके प्रति प्रेम न हो तब तक विनोद हो ही नहीं सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मन में एक ओर से तत्त्वज्ञानके प्रवेश करते ही हास्य-विनोद दूसरी ओरसे निकल भागे।

(७६) गम्भीर और खेलवाड़ी दोनों वृत्तियाँ परस्पर एक दूसरी की विरोधिनी हैं और इन्हीं दोनों के मिश्रणसे विनोद उत्पन्न होता है। संसार की किसी प्रकार की उपपत्ति कभी समर्पक रीतिसे और सब अंशोंमें ठीक ठीक प्रयुक्त नहीं हो सकती; इसलिये तत्त्वज्ञानी होनेसे विनोद-प्रिय होनेकी सम्भावना मात्र उत्पन्न होती है। आनन्दवाद या सदाशावाद (Optimism) को ही लीजिए। संसारमें नित्यप्रति हम लोग जिन दुःखोंका

अनुभव करते हैं सदाशावादसे उनका किसी प्रकार मेल नहीं मिलाया जा सकता। मान लीजिये कि किसी व्यक्तिके हृदयमें मनुष्य-मात्रके लिये सच्ची चिन्ता और सहानुभूति है; ऐसे मनुष्यसे यदि यह कहा जाय कि संसारमें जो दुःख हमें दिखलाई पड़ते हैं, वे वास्तवमें दुःख नहीं हैं बल्कि जीवों या संसारको आनन्द-पूर्ण बनानेके साधन हैं तो यह बात उसके मनमें न जमेगी। परन्तु यदि वही मनुष्य विनोदप्रिय तो हो पर इस प्रकारके आनन्दवाद या सदाशावादसे वह पूरी तरह सम्पन्न न हो तो भी वह निराशावादी या दुःखवादी (Pessimist) नहीं कहा सकता। वह केवल यही समझेगा कि इस संसार में मनुष्योंके साथ ईश्वर एक प्रकारका खेलवाड़ खेल रहा है। इस प्रकारके विचारमें प्रकारान्तरसे गम्भीर और विनोद-पूर्ण विचारोंका मिश्रण होगा और उसे हँसी आवेगी। उसे अपने स्वरूपकी अज्ञानताके लिये खेद न होगा, बल्कि वह बहुधा अपने आपसे कहेगा—"यह सब गोरख-धन्धा है।" यहाँ चाहे जिस उपपत्ति को लो, वह पूरी नहीं उतरती और न सभी अंशों में प्रयुक्त हो सकती है। तब फिर बराबर उपपत्तियाँ निकालनेके लिये ही क्यों परिश्रम किया जाय? इस स्थितिका मनन करनेसे हमें जो मजा मिलता है, वही सबसे अधिक ठीक है।"

विनोदके साथ आध्यात्मिक या पारमार्थिक विचारोंका सम्बन्ध इसी प्रकारका है। परन्तु यदि इस सम्बन्धको छोड़ कर भी हम विचार करें तो सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर हमें यह जान पड़ेगा कि संसारकी नैतिक उन्नतिमें भी विनोदसे बहुत अप्रत्यक्ष सहायता मिलती है। अनीति को ढूँढ़ निकालनेका काम विनोदकी सहायतासे जितनी उत्तमतापूर्वक हो सकता है

उतना और किसी प्रकार नहीं। यदि हम केवल नाराज़ होकर अनीतिकी निन्दा करें तो बहुत सम्भव है कि वह बिगड़ैल घोड़ेकी तरह उलटे और भी अनिष्ट कर डाले। परन्तु विनोदकी मुलायम सलाहसे अनीतिकी दोष-युक्त दृष्टिमें अन्तर लगाया जा सकता है और वह दोष धीरे धीरे दूर किया जा सकता है। स्वयं विनोदप्रिय स्वभावको चाहे आप सद्गुणोंमें गिनें या न गिनें, पर उसके द्वारा होनेवाले नैतिक लाभके विषयमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता। विनोदको सद्गुण कहनेमें भी हमें कोई हानि नहीं दिखलाई देती। जिसके कारण मनुष्यको स्वयं इतना सुख हो सकता है और जिसके द्वारा दूसरोंका इतना सुधार सम्भव है, हम नहीं समझ सकते कि उसे हम सद्गुण क्यों न कहें। पहले एक स्थान पर यह कहा जा चुका है कि मनुष्यके मनमें चाहे कितना ही पाप या दुष्ट और निंद्य विचार क्यों न हो, उसे एक प्रकारकी हँसी अवश्य आवेगी। परन्तु इस प्रकारके दूषित हास्यको छोड़कर जिस मनुष्यको और प्रकारकी निर्दोष हँसी आ सकती हो वह सचमुच धन्य है। प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता कारलाइलने एक स्थान पर कहा है कि जो मनुष्य अपने जीवनमें एक बार भी खिलखिला कर और खुले मनसे हँसा हो वह कदापि अत्यन्त बुरा नहीं हो सकता।*

विनोदप्रिय मनुष्यमें कुछ न कुछ अच्छे गुण अवश्य होंगे। विनोदको हम चाहे सद्गुण कहें और चाहे न कहें, पर इतना

---

* No man who has once wholly and heartily laughed, can be altogether irreclaimably bad. In cheerfull souls, there is no evil.—Carlyle.

अवश्य मानना होगा कि अनेक प्रकारके दूसरे सद्गुणोंके होने हुए भी जब तक मनुष्यमें विनोदप्रियता न हो तब तक वह पूर्ण सद्गुणी नहीं कहा जा सकता। जब तक सद्गुणों और सुस्वभावका जोड़ न हो तो तब तक काम ही नहीं चल सकता। और सुस्वभावकी सबसे अधिक उत्पत्ति विनोदशीलता के कारण ही होती है। विनोदी मनुष्य अपने स्वाभाविक गुणोंसे अकारण दूसरोंके चित्त नहीं दुखाता, वह औरोंको सदा योग्य उपायोंसे प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करता है और उनके साथ उत्तम तथा दयापूर्ण व्यवहार करता है। इस प्रकार वह स्वयं भी प्रसन्न रहता है। और दूसरों की प्रसन्नता का भी कारण होता है मनुष्यकृत दुःखरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये मनुष्यकृत विनोदसे बढ़ कर और कोई प्रभावशाली प्रकाश नहीं है। विनोदप्रिय मनुष्यको मनुष्यजातिका श्रेष्ठ उपकारक मानना पड़ता है। शुद्ध भावके विनोदसे स्नेहियोंका स्नेह और कुटुम्बके लोगोंका पारस्परिक प्रेम अधिक दृढ़ होता है। परस्पर केवल आदर-पूर्वक व्यवहार करनेवाले स्नेहियोंका स्नेह, विनोद-युक्त आदरसे व्यवहार करनेवाले स्नेहियोंके स्नेहकी अपेक्षा कम रम्य, कम सुखकर और कम स्थायी होता है। एक ऐसे कुटुम्बको लीजिए जिसमें सब लोग आपसमें केवल अपने २ रिश्तेका ध्यान रख कर ही व्यवहार करते हों; और एक दूसरे ऐसे कुटुम्बको लीजिए जिसमें लोग अपने रिश्तेको न भूलते हुए मित्रताके नाते से हँसी खुशी से बरताव करते हों। भला बतलाइए तो, इन दोनों कुटुम्बोंमें से सबसे अधिक सुखी किस कुटुम्बके लोग होंगे। बहुत से घरोंमें जब किसी युवकके घर कोई लड़का-बाला होता है तो वह युवक अपने माता-पिताके सामने खड़ा भी नहीं होता; अधेड़ पति-पत्नीको परस्पर बातचीत करनेके लिये एक मध्यस्थकी आवश्यकता होती है इस प्रकार मर्य्यादाका आव-

श्यकता से अधिक ध्यान रखनेवाले बहुत से विनोद-शत्रु कुटुम्ब दिखलाई देंगे। इसके विरुद्ध किसी कुटुम्बमें भाई-भाई, पति-पत्नी, माता-पिता और बालक आदि परस्पर हिल मिलकर बातचीत करते हैं, उठते बैठते हैं और अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार आमोद-प्रमोद करते हैं; छोटे बड़े सब एक दूसरेकी बातोंका शिष्ट और मर्य्यादा-युक्त उत्तर देते हैं और इस प्रकार सबका सदा मनो-विनोद होता रहता है। ऐसी स्थितिमें यदि उस कुटुम्बको पृथ्वी पर सुखका अवतार मान लिया जाय तो कुछ अनुचित न होगा। अँगरेज कवि टेनिसनने कहा है कि गृहस्थीमें अच्छा हास्य सूर्योदयके समान है। पाठशालाओंके सम्बन्धमें भी यही बात है। यदि शिक्षक और छात्र परस्पर विनोद करें तो यह न समझना चाहिए कि गुरु-शिष्यवाले सम्बन्ध को छुट्टी मिल गई। यही नहीं, बल्कि जो शिक्षक विद्वान् होनेके अतिरिक्त विनोदप्रिय भी होता है, शिष्योंके लिये वही सबसे अधिक प्रिय और मान्य भी होता है।

(८१) हाँ, इस बात का उचित प्रतिबंध अवश्य होना चाहिए कि हास्य-विनोद सीमासे बढ़ न जाय और उसका कोई बुरा परिणाम न हो। पर इस प्रकारके प्रतिबंधके लिये किसी को विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं होती। विनोद के अतिरेकके कारण सद् और असद्के विवेकके नष्ट हो जाने की आशंका होती है और इसलिये लोगोंको अपनी उचित मर्य्यादा का ध्यान ही नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त विषय-गत मर्य्यादा यदि न रह जाय तो भी विषयगत एक प्रकार की मर्य्यादा होती ही है। वह इस प्रकार कि यदि हमारे विनोद से दूसरे को दुःख पहुँचा तो उसमें हमारे विनोदमें आपही भव-सिद्ध साक्षियाँ ही यथेष्ट होंगी। राज-दरबारों, विद्या-

मन्दिरों और कला-भवनों आदि में आज तक हास्यमें जितनी सहायता ली गई है वह यदि समझ में आ जाय तो फिर और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यद्यपि इस बातका पता नहीं लगता कि प्राचीन कालमें सब लोग हास्य-विनोद की कलाको प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक समझते थे, तथापि यह बात सब लोगों ने स्वीकार की है कि उसके कारण सभ्यतामें किसी प्रकारकी कमी नहीं आती। राज-दरबारोंमें और धनवानोंके यहाँ बराबर हास्य-विनोद होता रहता था। हमारे यहाँ संस्कृत नाटकोंसे पता लगता है कि विदूषक लोग राजाओंके परम प्रिय मित्र हुआ करते थे। राजाओं और दरबारियोंके साथ विदूषक लोग मनमाना विनोद करते थे। विक्रम और भोजके दरबारोंमें कवियोंकी तरह विनोदी भी रहा करते थे। पश्चात्य राष्ट्रोंके राजाओं और रईसोंके यहाँ भी विदूषक या विनोदी रहा करते थे। येलोग दो प्रकारके होते थे, क्लुउन (Clown) और फूल (Fool)। इनके अलग अलग और नौ विभाग हैं।

(१) The general domestic fool या घरमें रहने वाले नक्काल (२) Clown या नक्काल (३) Female fool या विदूषिका (४) City or corporation fool या नगर के नक्काल (५) The tavern fool या सराय और शराबखानों के नक्काल (६) The fool of the ancient mysteries and moralities या पौराणिक नक्काल (७) The fool in the old dumb shows या एक प्रकार के तमाशे के नक्काल (८) The fool in the Morris dance या एक प्रकार के नाच के नक्काल और (९) The Mountebank's fool or Merry sudrew या

विदूषक, शेक्सपिअर के एक टीकाकार ने इन नक़ालों और विदूषकों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है :—

"The practice of retairing fools can be distinctly traced from remotest times. They were to be found alike in the palace and the brothel. The pope had his fools and the bawd hers; They excited the mirth of Kings and beggars; the hovel of the vilian and the castle of the Baron were alike exhilerated by their jokes. With respect to the antiquity of this custom in England it appears to have existed even during the period of our Saxon history, but we are certain of the fact in the reign of William the Conqueror. They continued an appertanance to the English Court to a late period. Mickle John, the tool of Charlse 1 was perhaps the last regular personage of that kind. These hirelings required considerable wit and dexterity to please their employers.....The licence allowed them was very great.

इस प्रकार के नक़ालों और विदूषकों में विनोद करने की कितनी अधिक शक्ति थी—उसकी कल्पना middleton नामक एक अँगरेज़ प्रहसनकार के निम्न लिखित वाक्य से हो सकती है। Of the clowns that I have seen in my time

the very peeping out of one of them would have made a young heir laugh though his father lay a—dying; a man undone in law the day before.

प्रसिद्ध अँगरेज़ नाटककार शेक्सपियर के दुःखांत और सुखांत सभी नाटकों में पात्ररूप से विदूषक आप हैं। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि कविने उनके मुँह से जो विनोद वचन कहलवाए हैं वे निम्न कोटि के नहीं हैं बल्कि ऐसे हैं कि जो सभ्यों और तत्त्वज्ञों को शोभा दे सकें। अक्लमंदी बघारने वाले दूसरे पात्रों और स्वयं नायक तथा नायिका तक की फ़ज़ीहत कविने उनसे कराई है। उनके विनोदपूर्ण, मार्मिक, उचित और तत्त्वज्ञान की प्रतीति करानेवाले भाषणों के पढ़ने से पाठकों को उच्चकोटि के हास्य और विनोद का आनन्द मिलता है।* संस्कृत नाटकों में भी इसी प्रकार के

---

* Twelfth night नाटक में शेक्सपियर ने विदूषक (clown) और ओलीविया नायिका के संवाद में विदूषक का चातुर्य्य दिखलाया है वह स्थल बहुत ही रोचक है।

Clown.—Wit, and't be thy will, put me into good fooling! Those wits that think they have thee, do very oft prove fools; and I, that am sure I lack thee, may pass for a wise man. For what says Quinapalus? Better a witty fool than a foolish wit.—God bless thee, lady!

Olivia.—Take the fool away.

मार्मिक विदूषक दिखलाए गए हैं, लेकिन मृच्छकटिक नाटक में का विदूषक स्वाभिमानी और मित्रप्रेमी होने पर भी जैसा

Clown.—Do you not hear, fellows? Take away the lady.

Oli.—Go to, you are a dry fool; I will no more of you: besides, you grow dishonest.

Clo.—Two faults, Madonna, that drink and good counsel will amend: for give the dry fool drink, then is the fool not dry; bid the dishonest man mend himself: if he mend he is no longer dishonest; if he cannot, let the botcher mend him. Anything that is mended is but patched; virtue that transgresses is but patched with sin; and sin that amends is put patched with virtue. If that this simple syllogism will serve, so; if it will not, what remedy? As there is no true cuckold but calamity, so beauty's a flower:—the lady bade take away the fool; therefore, I say again, take her away.

Oli—Sir, I bade them take away you.

Clo.—Misprision in the highest degree! Lady *cucullus non facit monachum*; that's as much as to say I wear not motley in my brain. Good Madonna give me leave to prove you a fool.

मार्मिक और विनोदप्रिय प्रमाणित हुआ है वैसा और किसी नाटक का विदूषक प्रमाणित नहीं हुआ है।

इसी प्रकार King Lear नामक नाटक के संभाषण भी बहुत ही मार्मिक हैं। मासपेरो नामक ग्रंथकार ने अपने Daw of Civilization नामक ग्रंथ में इस बात का प्रमाण दिया है कि मिश्र देश के राजाओं के पास भी विदूषक रहा करते थे। इतिहास से यह भी सिद्ध होता है कि ग्रीक और रोमन अमीरों के यहाँ भी विनोदी सेवक रहा करते थे। और मध्ययुग में तो प्रायतौर पर विदूषक आदि रखे जाते थे।

Oli.—Can you do it?

Clo.—Dexterously good Madonna.

Oli.—Make your proof.

Clo.—I must catechise you for it Madonna; good my mouse of virtue, answer me.

Oli.—Well, *sir*, for want of other idleness, I will, abide your proof.

Clo.—Good Madonna, why mourn'st thou?

Oli.—Good fool, for my brother's death.

Clo.—I think his soul is in hell, Modonna.

Oli.—I know his soul is in heaven, fool.

Clo.—The more fool you, Madonna, to mourn for your brother's soal being in heaven.—Take away fool, gentleman.

(८१) यह बात जाननेके लिये कि विद्या-मन्दिरमें हास्य-रसका कितना आदर हुआ है, हमें ग्रीक साहित्यको देखना चाहिए आजकलकी तरह ग्रीक साहित्यके उन्नति-कालमें भी नाटक और प्रहसन आदि ही हास्य-विनोदके प्रधान आधार थे। हास्यका उद्दीपन करनेवाले विषयोंका जितना अधिक समावेश नाटकोंमें हो सकता है उतना और किसी प्रकारके ग्रन्थोंमें नहीं हो सकता। ग्रीक लोग स्वभावतः दूसरोंकी नकलें उतारने, दिल्लगियाँ उड़ाने और हाजिर जवाबीमें बहुत होशियार होते थे। खेतसे फसल काट कर खलिहानमें ला रखनेके बाद वे अंगूरी शराब खूब पीते थे, हास्य-विनोद करते थे और बढ़िया गीत गाते थे। वे व्याजस्तुतिकी कविताएँ भी खूब बनाते थे। इन्हीं बातोंके कारण ग्रीक भाषामें हास्य-रस प्रधान नाटक बननेलगे। जब ग्रीक राष्ट्र उन्नतिके सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुका था उस समय एरिस्टोफेनीस नामक विद्वान्के द्वारा प्रहसनोंका भी खूब उत्कर्ष हुआ था *। उसके बनाए हुए नाटक या प्रहसन आज-

---

If (Athenian Comedy) flowrished in those glorious days of Athens which not long preceded her political decline, when the faculties of her citizens were strung to full pitch, when there was much wealth and much lisure, when the hearts were highly cultivated and education widely spread and the refinements and vices which follow such a state of things presented on ample field for play, wit and fancy, the *Badinage* of the humourist or the more trenchent weapons of Satire.

Aristophanes by Rev. Lucas Collins.

कलके नाटकों या प्रहसनोंकी तरह नहीं होते थे ; क्योंकि उनमें पात्र, गीत, भाषण, नकल आदि बहुत सी बातोंका समावेश होता था। वह प्रहसन बरसमें तीन बार एथेन्स नगरमें मद्य-देवताके महोत्सव (Diouysia or the great Festivals of Bachhus.) के अवसर पर रंगभूमि पर खेले जाते थे। ग्रीक लोगोंको हँसी दिल्लगीका बहुत शौक था। इन महोत्सवों पर प्रहसनोंके लिये बड़े बड़े इनाम दिए जाते थे। उन प्रहसनोंमें बड़े बड़े आदमियों, सामाजिक रीति-नीति और राजकीय विषयों पर टीकाएँ और टिप्पणियाँ होती थीं। उन दिनों एथेन्समें शिक्षाका बहुत अधिक प्रचार था। पर लोग छापेकी विद्या न जानते थे, इस लिये पुस्तकें बहुत थोड़ी होती थीं। जो लोग नित्य न्यायालयों या राज-सभाओंमें जा कर तरह तरहके ज्ञान प्राप्त करते थे उनके मनोविनोदके लिये प्रहसनों तथा इसी प्रकारके और साधनोंकी बहुत आवश्यकता होती थी। उस समय ग्रीक लोगोंकी सभ्यता और शिक्षा बहुत ऊँचे स्थान तक पहुँच चुकी थी। उनकी उन्नतिका वास्तविक अनुमान करनेके लिये इस समयके कवियोंके सुन्दर काव्यों, इतिहासों, वक्तृताओं आदिकी अपेक्षा हास्य-रसपूर्ण प्रहसनोंका पढ़नाही अधिक फलदायक होगा। अरिस्टाफेनीसके ग्रन्थोंसे इस बातका बहुत अच्छी तरह पता लग जाता है कि सर्वसाधारणकी शिक्षामें हास्य-रस-पूर्ण ग्रन्थोंसे कितनी सहायता मिलती है। क्लीआन, पत्सी बायडीस और साक्रेटीस आदिके समयकी एथेन्सकी वास्तविक स्थितिका ज्ञान अरिस्टोफेनीसके प्रहसनों को मूल भाषामें पढ़नेसे ही हो सकता है, अन्य उपायों से नहीं।

Aristophanes by Rev. Lucas,
Collius.

कहते हैं, सामराक्यूजके अत्याचारी राजा दिआनीशियस ने एक बार तत्त्व वेत्ता प्लेटोसे एथेन्स की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। इस पर प्लेटोने उसके पास केवल अरिस्टोफेनीसके "मेघमंडल" नामक प्रहसनकी एक प्रति भेज दी। इस प्रकार आजसे दो ढाई हजार बरस पहले प्रहसन विषयगत गुण दोष पर टीका करनेके मुख्य साधन हो गए थे। ऊपर कहा जा चुका है कि विषयीगत गुण-दोष पर टीका करनेके लिये विनोद बहुत अच्छा साधन हो सकता है। इस बातका सबसे अच्छा प्रमाण उसी प्रहसनकार के "शराब की बोतल" नामक ग्रन्थ में मिल सकता है। लोगों ने अरिस्टोफेनस पर यह अपवाद लगाया था कि उसने अत्यन्त मद्यप हो कर अपनी धर्म्म-पत्नी काव्य-प्रतिभा का परित्याग कर दिया है। इसी विषयको लेकर उसने "शराब की बोतल" नामक प्रहसन लिखा है। उसका नायक वह स्वयं बना है और उसका कथा-भाग उसने यह रक्खा है कि—मेरा शराब पीना कम हो गया है, मैंने प्रतिभारूपी अपनी धर्म्म-पत्नी को फिर सप्रेम अंगीकार कर लिया है और अब मैं उस लोकापवाद से मुक्त हो गया हूँ। अरिस्टोफेनीस के लिखे हुए "मेघमंडल" "लिसिष्ट्राटा" "मंडूक-सभा" "रमणी- महोत्सव" "विहंगविलास" आदि अनेक प्रहसन हैं जो बहुत प्रसिद्ध हैं। "मेघमंडल" में उसने "स्कूलमेन" नाम के एक प्रकार के नए तत्त्वज्ञानियों की खूब फजीहत की है। "गंधालिका" (Wasps) नामक प्रहसन में उसने उन लोगों की बहुत निन्दा की है जो न्यायालयों में ज्यूरी या पंच बन कर बैठने के बहुत शौकीन होते हैं। "मंडूक-सभा" में उसने युरिपाइडिस नामक तत्त्ववेत्ता और अपने सहव्यवसायी की खूब दिल्लगी उड़ाई है। तात्पर्य्य यह कि आज से ढाई हजार

बरस पहले अरिस्टोफेनीस ने हास्य-रस का जो व्यावहारिक उपयोग कर दिखलाया था, वही उपयोग आजकल ज्यों का त्यों होता हुआ दिखलाई पड़ता है। फ्रेंच प्रहसनकार मालियर तथा अँगरेज प्रहसनकार शेरडन और गोल्डस्मिथ भी अपने समय में बहुत प्रसिद्ध हो गए हैं। उनके लिखे हुए प्रहसन भी अब तक बड़े आनन्द और प्रेम से पढ़े जाते और बोधप्रद माने जाते हैं। यह तो हुए प्रहसनों की बात। पर हास्य रस केवल प्रहसनों में ही नहीं भरा हुआ है बल्कि अच्छे अच्छे नाटकों और उपन्यासों में भी संगृहीत है। यदि कोई मनुष्य हास्य-रस के लेख लिखनेवाले सर्व मान्य लेखकों की सूची तैयार करे तो अवश्य ही वह सूची बहुत बड़ी होगी। बड़े बड़े फ्रान्सीसी, अँगरेज और संस्कृत ग्रन्थकारों के नामों और ग्रन्थों से यह बात सिद्ध की जा सकती है कि साहित्य में हास्य-रस बहुत ही ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित है। हिन्दी में हास्य-रस के दरजों के ग्रन्थ प्रायः नहीं के समान हैं। इस सम्बन्ध में जो कुछ थोड़ा बहुत काम किया है, वह केवल स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र ने।

(८२) साहित्यकी दृष्टिसे लेख और भाषणमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ सकता। हास्य-रसके लेख लिखनेवालोंकी अपेक्षा हास्य-रसके भाषण करनेवालोंकी संख्या प्रायः दस गुनी होगी। इसका कारण यह है कि लिखनेकी अपेक्षा बोलनेके अवसर बहुत अधिक होते हैं। ऐसे बहुत से लोग मिलेंगे जिनकी साधारण बातचीतमें हास्य-रसका बहुत कुछ समावेश हो, पर जिन्होंने हास्यरसात्मक एक पंक्ति भी न लिखी हो। इस बातमें जरा भी विवाद नहीं हो सकता कि हास्य-रसात्मक बातें करना सभी देशों और सभी कालोंमें मनकी संस्कृतिका एक

लक्षण माना जाता है। चाहे छोटे छोटे विनोदपूर्ण चुटकुले हों और चाहे हास्य-रसके बड़े बड़े ग्रन्थ, हमारी समझमें विनोदकी योग्यता निश्चित करनेके लिये दोनोंकाही समान रूपसे उपयोग हो सकता है। राज दरबारसे ले कर एक दरिद्रकी झोंपड़ी तक सभी स्थानोंमें विनोदका उपयोग उत्तम और विहित माना गया है। खेत, खलियान, कारखाने, मित्र-मंडली, पाठशाला, राज-सभा आदि सभी स्थानोंमें लोग बराबर हास्य-पूर्ण बातें करते हैं; पर उन सबका संग्रह नहीं हो सकता। यद्यपि ग्रन्थकारोंके लेखोंकी तरह उनका परिचय नहीं दिया जा सकता तथापि मनमें उनकी कल्पना अवश्य हो सकती है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे उसी कल्पनाकी सहायतासे न्याय-पूर्वक विनोदकी उपयोगका अनुमान कर लें। हास्य-रसात्मक भाषणोंके सम्बन्धमें केवल इतनाही कहना यथेष्ट होगा कि प्राचीन कालकी भोज और विक्रम आदिकी सभाओंकी तरह सभ्यताके सर्वोच्च शिखर पर पहुंची हुई बीसवीं शताब्दीकी पश्चिमी राज-सभाओंमें भी सर्व-मान्य, तत्त्ववेत्ता, राजनीतिज्ञ और ग्रन्थकार जो भाषण करते हैं, उनमें भी जहाँ तक हो सकता है, हास्य-रसकी ही प्रधानता होती है। प्रसिद्ध वक्ता लार्ड रोजबरीके व्याख्यानोंके सर्वप्रिय होनेका मुख्य कारण यही हास्य-रस है। इसके विरुद्ध-एडमंड बर्कको देखिए। वह था तो बहुत बड़ा विद्वान् और भारी तत्त्ववेत्ता, पर जबवह डारलीमेन्टमें बोलनेके लिये खड़ा होता था तो लोग कहते थे कि अब भोजन पर जानेके लिये घंटी (Dinner Bill) बजी है। केवल हास्य-रसके अभावके कारण लोग उसके व्याख्यानके आरम्भ होतेही उठ कर चले जाते थे। अब इस सम्बन्धके अन्तमें केवल इतनाही कहना बाकी रह गया है कि यदि ऐसे समयमें जब कि व्यक्तिसत्ता प्रबल थी, राज-दरबारमें विनोद सर्वमान्य था, तब ऐसे समयमें जब कि

राज-कार्योंमें एक आदमीकी जगह सैकड़ों आदमियोंको बोलना और मत देना पड़ता है, सुभाषितका मान अवश्यही पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जाना चाहिए।

(८३) अब यह देखना रह गया है कि कला-भवनमें हास्य-रसका प्रवेश किस द्वारसे हुआ है। सुन्दरता अथवा सुसम्बद्धताही कलाकी आत्मा है और विनोदकी आत्मा असम्बद्धता है। मनुष्यकी वाक्सृष्टि जितनी समृद्ध होती है उतनी कला-सृष्टि समृद्ध नहीं होती। कला सृष्टिके-चित्र-कला, शिल्प-कला और गायन-कला-तीन मुख्य भेद हैं। इनमेंसे गायन-कला का हास्य-रसके साथ विरोध है। हास्य-रस उत्पन्न करनेवाला गान होना सम्भव नहीं जान पड़ता। गाना या तो सुरीला होगा और या बेसुरा। जो गाना सुरीला होगा वह सुननेमें बहुतही भला जान पड़ेगा; उसे सुन कर कभी हँसी नहीं आवेगी। कान्य-दोष जिस प्रकार सदा हास्य-रसका विभाव हो सकता है उस प्रकार बेसुरे गानेसे सदा हास्य नहीं उत्पन्न हो सकता; हाँ शायद कभी कभी उससे हँसी आ सकती है। विलक्षण अर्थवाले कुछ गाने अवश्य ऐसे होते हैं जिनसे हँसी आती है; पर वह हँसी गानेके कारण नहीं बल्कि अर्थके कारण होती है शिल्प-कलाका उपयोग भी हास्य-रस उत्पन्न करनेमें होता हुआ नहीं देखा गया। लेकिन यदि केवल हास्य उत्पन्न करनेके नियमसे ही बुरी शिल्प-रचनाकी जायगी तो उसे देख कर अवश्य हँसी आवेगी। यदि गणेशजीकी बढ़िया मूर्ति बना कर उनकी सूँड़में एक चुरुट पकड़ा दिया जाय तो उसे देख कर अवश्य हँसी आवेगी। इस प्रकार जो बातें कल्पनामें असंबद्ध जान पड़ती हैं, वह शिल्प-कलाके द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं। लेकिन ऊपर गणेश जीकी मूर्तिका जो उदाहरण दिया गया है

उसमें मूर्तिको देख कर हँसीके बदले क्रोध आनेकीही अधिक सम्भावना है। क्योंकि पवित्र पदार्थमें अपवित्रता लाना हास्यका अच्छा विभाव नहीं हो सकता। अब बाकी रही चित्र कला। सो उसमें भी बहुधा अन्य कलाओंकी तरह जड़ द्रव्यके द्वारा निर्मितकी हुई रम्य-कलाही भली जान पड़ती है।

पर इधर कुछ दिनोंसे चित्र-कलाका उपयोग भी हास्य-रस उत्पन्न करनेकी ओर होने लगा है। यदि चित्रकारकी अयोग्यताके कारण चित्र बेढँगा बन जाय तो वह चित्र कभी हास्य-रसका विभाव नहीं हो सकता। लेकिन यदि चित्र-कला या रेखन-कलाका कोई अच्छा पण्डित जान बूझ कर किसी अद्भुत या विकृत कल्पनाका चित्र बनावे तो उसे देख कर अवश्य हँसी आवेगी। अँगरेज चित्रकार होगार्थने सामाजिक स्थितिके तशक जो चित्र बनाए हैं वे इसी कोटिके हैं। उसने अवश्यही चित्र-कला का उपयोग हास्य उत्पन्न करने में किया है। आज-कल समाचारपत्रों और मासिक पुस्तकों में सामयिक विषयों और व्यक्तियों पर हास्य-रस उत्पन्न करनेवाले चित्र दिए जाते हैं। लन्दन के अँगरेज़ी "पंच" और "वेस्ट मिनिस्टर गजट" आदि पत्रोंमें इसी प्रकारके चित्र रहा करते हैं। "रिव्यू आफ रिव्यूज" के एक स्वतन्त्र अंश में महीने भरकी सब बातें इसी प्रकार के चित्रों से दिखलाई जाती हैं। बिलायत में लिनले सबोर्न, बरनर्ड पारट्रिज, बेरिंग गूल्ड आदि लोगों ने इस प्रकार के चित्र बनाने में ही अपना सारा जीवन बिता दिया है। हास्य-रसात्मक चित्र बनाने और शब्दों या वाक्यों से विनोद करने का फल प्रायः समान ही होता है। बल्कि शब्द-चित्र की अपेक्षा रंगों और रेखाओं से बनाया हुआ चित्र अर्थ का ठीक ठीक बोध कराने में अधिक समर्थ होता है। आजकल बिलायत

के राजकीय पक्ष आपस में एक दूसरे पर टीका टिप्पणी करने में जिन साधनों का उपयोग करते हैं उनमें हास्य-रसोद्दीपक चित्र बहुत ही मुख्य साधन हो गए हैं। मि० ग्लैडस्टन, लार्ड सालिसबरी, लार्ड रोज़बरी मि० चेंबरलेन आदि बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और राज-कर्म-चारियों के इस प्रकार के कितने चित्र निकले, इसकी गिन्ती ही नहीं। जो वेष विकृति शब्दों से बड़ी कठिनता से दिखलाई जा सकती है, वही चित्रों से बड़ी सफाई से दिखलाई जा सकती है। ऐसे चित्रों को Cartoon या Caricature कहते हैं। अँगरेजी पत्रों की देखादेखी भारत में भी देशी पत्र आदि ऐसे चित्र निकालने लगे हैं। कुछ समय पहले लखनऊ से उर्दू में अवध पंच बहुत अच्छा निकलता था। होली आदि अवसरों पर भी बहुत से देशी पत्रों में ऐसे चित्र निकला करते हैं।

लेकिन इस सम्बन्ध में एक प्रश्न बहुत ही महत्व का है। क्या हास्य-विनोद और बुद्धिमत्ता में किसी प्रकार का सम्बन्ध है? यह तो स्वयं-सिद्ध बात है कि विनोद या चोज की बात सुन कर सब लोगों को हँसी आती है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि उससे मनुष्य की बुद्धि भी परिष्कृत होती है या नहीं। जिन बातों को सुन कर हँसी आती है यदि उन्हें हम बिलकुल ही असत्य समझते हों तो बहुधा हमें हँसी नहीं आवेगी। इसका यह अर्थ होता है कि चोज या विनोद में सत्य का भी कुछ अंश होना चाहिए। अब वह अंश चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न हो। यदि उसमें सत्य का बहुत ही थोड़ा अंश होगा तो यह मान लिया जायगा कि वह बात बहुत अधिक अतिशयोक्ति से अथवा नमक मिर्च लगा कर कही गई है। पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि अतिशयोक्ति और असत्य

में बहुत बड़ा अन्तर है। चोज और विनोद-वचन की तह में कुछ सत्यता होती है और उस सत्यता को ढूँढ़ निकाले यह एक प्रकार की बुद्धिमत्ता ही है। लेकिन चोज और विनोद-वचन के द्वारा मिलानेवाले ज्ञान और बुद्धिमत्ता तथा सीधे सादे शब्दों से—उदाहरणार्थ नीति के वचनों से—मिलनेवाले ज्ञान या बुद्धिमत्ता में बहुत अन्तर है। चोज या विनोद से मिलने वाला ज्ञान कम और स्वरूपान्तर में होता है और साधारण वाक्यों के सभी अंगों में—भीतर और बाहर—ज्ञान ही ज्ञान भरा रहता है। लेकिन परिमाण में कम होने पर भी उपयुक्तता के विचार से चोज या विनोद के द्वारा मिलनेवाला ज्ञान ही अधिक उत्तम है। यदि कोई औषधि—ज्यों की त्यों दी जाय तो वह थोड़े ही परिमाण में बहुत सी दी जा सकती है। अगर आप किसी को सोंठ का अर्क देना चाहें तो उसकी एक बूँद से ही काम चल जायगा। लेकिन अगर वह अर्क पानी या किसी दूसरी अच्छी चीज़ में मिलाकर न दिया जायगा तो वह अच्छा भी न लगेगा और उसकी गन्ध भी बहुत तेज़ होगी। पर यदि उसी एक बूँद को आप लिंजरेड, या और किसी दूसरे बढ़िया पानी में थोड़ी सी चीनी के साथ देंगे तो उसका स्वाद भी बहुत बढ़ जायगा और उसका गुण भी न घटेगा। इसी प्रकार यदि किसी को कोई बढ़िया और अच्छी बात समझाना हो तो उसे स्पष्ट अनलंकृत और गम्भीर वचनों में न कह कर स्पष्ट रीति से सुन्दर और अलंकृत शब्दों में और हास्योत्पादक बना कर कहा जाय तो वह समझ में जल्दी आ जायगी और मन पर उसका प्रभाव भी बहुत अच्छा होगा। खरी और स्पष्ट बात बँधे रुपए की तरह है और हास्योत्पादक रूप में कही हुई बात भुनी हुई रेजगी की तरह है। दोनों को मिलाने से अन्त में बराबर ही मूल्य होता है। लेकिन जिस प्रकार बँधे

हुए रुपए की अपेक्षा भुनी हुई रेजगी का उपयोग अधिक होता है उसी प्रकार साधारण नीतिवचनों की अपेक्षा सुभाषित के अन्तर्गत तकिये हुए ज्ञान का व्यवहार में अधिक उपयोगी होता है। बाजार में यदि आपको दस पाँच सौदे लेने हों तो जगह जगह खाली बँधा रुपया दिखलाने का कोई फल नहीं होगा; दूकानदार के पास बाकी पैसा न होने के कारण, पास में द्रव्य होते हुए भी आप खाली हाथ हिलाते हुए घर लौट आवेंगे। उसी प्रकार यदि आपके पास ज्ञान का बहुत बड़ा भांडार हो तो भी वह हास्य-रस के बिना प्रायः व्यर्थ ही होगा और सम्भव है कि उससे आपका अभीष्ट सिद्ध न हो। यदि किसी व्याख्याता के विचार सर्वोत्कृष्ट हों पर उसके पास हास्य-रस की सामग्री न हो तो लोगों को शिक्षा देने का उसका श्रम ठीक उसी प्रकार व्यर्थ जायगा जिस प्रकार सौ रुपए का नोट ले कर तरकारी खरीदने के लिये बाजार जानेवाले किसी भले आदमी का। यदि किसी छत या कोने आदि में कहीं थोड़ा सा मकड़ी का जाला लगा हो तो उसे हाथ से साफ करने की अपेक्षा जोर से फूँक मार कर या किसी दूसरे प्रकार साफ कर लेना कहीं अच्छा है। उसी प्रकार केवल तर्क-वाद रूपी हाथ की सहायता से किसी मनुष्य के मन पर लगा हुआ जाला साफ करने की अपेक्षा विनोद रूपी फूँक से उसे साफ करना अधिक उत्तम है। यदि आप किसी झूठ बोलनेवाले से लट्ठमार शब्दों में केवल इतना ही कह देंगे कि झूठ बोलना पाप है तो सम्भवतः उसका कोई विशेष फल नहीं होगा; पर यदि कोई दिल्लगीबाज किसी अच्छे ढंग से यही बात कहेगा तो झूठ बोलने वाला अधिक लज्जित होगा और आगे से झूठ न बोलेगा। तात्पर्य्य यह कि सुभाषित और विनोद में बुद्धिमत्ता का अंश बहुत कुछ होता

है। केवल उसे व्यक्त करने और उपयोग में लाने का प्रकार कुछ भिन्न होता है *।

केवल इस प्रकार के कुछ भिन्न होने के कारण ही सुभाषित पर से नीति का अधिकार उठ नहीं जाता। बल्कि इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि सुभाषित का उद्देश्य सदा लोगों को ज्ञान देना ही होना चाहिए और हास्य-विनोद नीति-पथ या तारतम्य से अलग न होना चाहिए। जहाँ एक दृष्टि से सुभाषित के लिये स्वतंत्रता अधिक है, वहाँ दूसरी दृष्टि से बन्धन भी बहुत अधिक है। अँग्रेज ग्रन्थमार एडिसन ने सुभाषित का जो वंश-वृत्त दिया है उसमें उसने सुभाषित को सत्य का दूर का सम्बन्धी परन्तु तारतम्य का औरस पुत्र ठहराया है। अर्थात् सुभाषित और विनोद कभी ऐसा न

---

* मैक्स आरेल नामक एक फ्रेंच विनोदी ग्रन्थकार इस सम्बन्ध में लिखता है:—

*"The humorists are the wise men of the world, because the most forcible way to impart truth is to do it according to a principle laid down by Horace—through a laugh, "*Ridentem dicere verum quid vetat.*" Many sermon would be remembered if the preacher had not sent his hearers to sleep by his prosey delivery but had kept them cheerful and attentive by the introduction of a little whole-some humour.

होना चाहिए जिससे उसके इन दोनों बड़ों की प्रतिष्ठा में किसी प्रकार का बट्टा लगे। *

इस में सन्देह नहीं कि हास्य और विनोद बहुत ही अच्छी चीज है ; पर तो भी व्यवहार में उसका उपयोग नमक या चीनी की तरह होना चाहिए। नमक या चीनी का व्यवहार अन्न में केवल रुचि उत्पन्न करने के लिये होता है और वह भी उतना ही होता है जितने से यथेष्ट रुचि उत्पन्न हो सके। रुचि उत्पन्न करने के लिये आम के मीठे अचार में भी नमक डाला जाता है और खट्टे अचार में भी ; परन्तु यदि इन में से किसी एक में भी नमक अधिक हो जाय तो वह बे-स्वाद हो जायगा और खाया न जा सकेगा। पेड़े या लड्डू में भी यदि चीनी अधिक पड़ जाय तो वह नष्ट हो जाता है। यही उदाहरण सुभाषित और विनोद के उपयोग के सम्बन्ध में भी ठीक घटता है। भगवच्चिंतन जिस प्रकार सोते जागते, उठते बैठते विहित बतलाया गया है उस प्रकार से विनोद सभी अवसरों पर विहित नहीं है। इसका पहला कारण यह है कि व्यवहार में हमें सैकड़ों आदमियों से काम पड़ता है और वह सब आदमी भिन्न भिन्न स्वभावों के होते हैं। इसके अतिरिक्त सभी अवसरों पर सभी लोगों की मनोवृत्तियाँ एक समान और

---

*Wherever you meet with anything like humour, see fit is remotedly allied to truth and leniably descended from good sense; if not, you may conclude it to be counterfeit.

——ADDISSON.

हास्य के लिये उपयुक्त नहीं होती। दूसरी बात यह है कि साधारणतः कोई मनुष्य इतना अधिक बुद्धिमान् और योग्य नहीं होता कि प्रत्येक अवसर पर उत्तम और शिष्ट-सम्मत विनोद कर सके। जो लोग उठते बैठते दिल्लगी किया करते हैं, लोगों को उनकी दिल्लगी पर हँसी नहीं आती बल्कि स्वयं उन दिल्लगी करनेवालों पर ही हँसी आती है। विनोद स्त्रियों के कटाक्ष के समान होता है। जो स्त्री दिन भर कटाक्ष करती रहेगी उसके कटाक्ष की प्रशंसा कोई न करेगा। इसी प्रकार जो आदमी दिन भर दिल्लगी करता रहेगा उसे कोई दिल्लगीबाज न कहेगा बल्कि सब लोग उसे मूर्ख और निकम्मा बतलावेंगे। इसके अतिरिक्त एक और बात यह भी है कि विनोद के लिये और बातों की अपेक्षा कुछ विशेष फुरसत की भी आवश्यकता हुआ करती है और इसी लिये हर दम दिल्लगी करते रहना ठीक नहीं जान पड़ता। उसके औचित्य का स्थूल मान से विचार करना पड़ता है। यदि किसी नए पौधे को बिलकुल सीधा बढ़ाने के लिये और उस में टेढ़ी तिरछी शाखें न निकलने देने के लिये हम उसकी जरा इधर उधर जानेवाली प्रत्येक मंजरी अथवा प्रत्येक डाली को काटने लगे तो वह पौधा प्रायः कभी बड़ा न होगा। जिस प्रकार ऐसे पौधे को बराबर काटते रहना ठीक नहीं है उसी प्रकार दिल्लगीबाज आदमी का हर एक बात पर सदा-टीका टिप्पणी करते रहना भी ठीक नहीं है। यदि विनोद और कुछ नहीं केवल पदार्थों का विकृत स्वरूप दर्शन अथवा अद्भुत कल्पनाओं का विलास हो तो तर्कवाद के तराजू पर तौल में बिलकुल ठीक उतरनेवाली अथवा औचित्य की कसौटी पर पूरे पूरे सौ नंबर पानेवाली दिल्लगी अच्छे से अच्छे बुद्धिमान् और विनोदी मनुष्य के दिमाग से भी नहीं निकल सकती।

हास्य-विनोद की सर्वमान्यता सिद्ध करने के लिये एक सब से उत्तम प्रमाण यह दिया जा सकता है कि संसार में शायद एक मनुष्य भी ऐसा न मिलेगा जिसने कभी कोई दिल्लगी न की हो, अथवा जिसके मुँह से कभी कोई विनोद-पूर्ण वचन न निकला हो। मनुष्य को जितनी अधिक हँसी दिल्लगी करनी चाहिए यदि वह उतनी अधिक हँसी दिल्लगी करता हुआ दिखलाई न दे तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह हँसी दिल्लगी को बहुत ही बुरा और निन्दनीय समझता है, बल्कि उसका अभिप्राय यह कि जिन जिन अवसरों पर हँसी दिल्लगी करना चाहता है उन उन अवसरों पर हँसी दिल्लगी करने की योग्यता उस में नहीं होती। हास्य-विनोद के सम्बन्ध बहुधा ईसाप-नीति की लोमड़ी और अंगूरोंवाली कहानी ठीक घटती है और उनकी सम्मति का अर्थ "अंगूर खट्टे हैं" से बढ़कर और कुछ भी नहीं होता। हास्य-विनोद की निंदा करनेवाले लोग हास्य के अवसर पर उसकी निंदा करके अथवा नाक भौं सिकोड़ कर तद्विषयक अपनी अपात्रता या असमर्थता ही सिद्ध करते हैं। ऐसे आवश्यकता से अधिक विचारशील लोग संसार में बहुत ही कम मिलेंगे जो निशा काल के चन्द्रोदय की तरह मन में हास्य का पूरा पूरा उदय होने पर भी केवल यही समझ कर अपने होंठ कस कर दबा रखें कि उसके कारण अनेक भाँति के मुख कमल प्रफुल्लित नहीं हो सकते और केवल इसी विचार से वे हास्य रूपी चन्द्रमा की सुधा-वर्षा न होने दें। मनुष्य का यह एक स्वाभाविक दोष है कि जो बात उसे नहीं आती उसकी महत्ता जहाँ तक हो सकती है, वह आवश्यकता से कम और थोड़ी समझता है। यदि लिखे हुए अथवा प्रत्यक्ष व्यवहार के विनोद को देख कर कोई मनुष्य बहुत नाक भौं सिकोड़े तो

हमें उचित है कि हम इसी विवेचन के तत्व का ध्यान रख कर उनके नाक भौं सिकोड़ने के कारण का पता लगावें। जो लोग दिल्लगी करना जानते हैं पर केवल औचित्य के विचार से दिल्लगी नहीं करते उनकी अपेक्षा अवश्य ही संख्या में ऐसे लोग बहुत अधिक होंगे जो दिल्लगी करना जानते हैं पर केवल औचित्य के विचार से दिल्लगी नहीं करते उनकी अपेक्षा अवश्य ही संख्या में ऐसे लोग बहुत अधिक होंगे जो दिल्लगी करना न जान कर भी दिल्लगी करने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार अपनी हँसी करा बैठते हैं। दिल्लगी, सच पूछिए तो, एक चमत्कारिक स्वभाव की स्त्री के समान है। जो लोग उसके प्रेम के विशेष भिक्षुक होते हैं उनकी वह बहुधा अवहेलना ही करती है। पर जो लोग उसके प्रति उदासीनता दिखलाते हैं उन पर वह स्वयं अनुरक्त हो जाती है। किसी छोटे मोटे समाज को लीजिए; उसमें आप को प्रायः सभी लोग ऐसे मिलेंगे जो हास्य-विनोद करके अपनी बातों में रस उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हुए दिखाई पड़ेंगे। अपनी वाक-चातुरी से प्रायः सभी को आनन्द हुआ करता है। एक ग्रन्थकार ने लिखा है कि संसार में ऐसे मनुष्य बहुत ही कम मिलेंगे जो अपने भाग्य से प्रसन्न और सन्तुष्ट हों अथवा जो अपनी दिल्लगी या विनोद-वचन से अप्रसन्न और असन्तुष्ट हों। इस विधान का अर्थ स्पष्ट है। मनुष्य चाहे कितना ही भाग्यशाली क्यों, नहो उसके कितनी ही सन्तति और सम्पत्ति क्यों न हो, वह सब प्रकार से कितना ही सुखी क्यों न हो, पर इन सब बातों से उसका पूरा पूरा समाधान कभी नहीं होता। लेकिन मनुष्य के मुँह से निकली हुई दिल्लगी की बात चाहे कितनी अनुचित, बेढंगी और नीरस क्यों न हो पर वह सदा यही समझ कर प्रसन्न होगा कि—"वाह! हमने भी क्या बढ़िया

बात कही !" तात्पर्य्य यह कि इस प्रकार के निसर्ग-सिद्ध और मनुष्य मात्र को प्रिय और आनन्ददायी जान पड़नेवाले हास्य-विनोद की वास्तविक योग्यता समझ कर उसके उचित प्रसार का प्रयत्न करना प्रत्येक प्रगति-प्रिय मनुष्य का कर्त्तव्य है।

